अंक-2 खंड-1

अक्टूबर-दिसम्बर 2023

अनुनाद

हिन्दी साहित्य, समाज और संस्कृति की ऑनलाइन त्रैमासिक पत्रिका

संपादक

शिरीष कुमार मौर्य

मेधा नैलवाल

अनुनाद

हिन्दी साहित्य, समाज और संस्कृति की ऑनलाइन त्रैमासिक पत्रिका

सम्पादक मंडल

शिरीष कुमार मौर्य (मुख्य सम्पादक)
प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखंड)
पिन -263001
shirishkumarmourya@kunainital.ac.in

मेधा नैलवाल
अतिथि व्याख्याता, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखंड)
पिन -263001
medhanailwal@kunainital.ac.in

संजय घिल्डियाल
प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखंड)
पिन -263001
sanjayghildiyal@kunainital.ac.in

राजेन्द्र कैड़ा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखंड)
पिन- 263139 rkaira@uou.ac.in

अनिल कार्की
संविदा व्याख्याता, हिन्दी विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखंड)
पिन- 263139 anilk@uou.ac.in

अधीर कुमार
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, ऋषिकेश परिसर, श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय, ऋषिकेश (उत्तराखंड)
पिन – 249201 adheerkumar@sdsuv.co.in

परामर्श मंडल

हरीशचंद्र पांडे (हिन्दी कवि)

लीलाधर मंडलोई (हिन्दी कवि)

सुबोध शुक्ल (हिन्दी आलोचक)

आशीष त्रिपाठी (हिन्दी आलोचक)

संपर्क

पता – वसुंधरा/ तीन, भगोतपुर तड़ियाल
पीरूमदारा, रामनगर, उत्तराखण्ड – 244715 दूरभाष : 9557340738
ई-मेल : medha.nailwal.anunad@gmail.com

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में विचार लेखक के स्वयं के हैं। संपादक की इनसे सहमति अनिवार्य नहीं है।

अनुनाद के मार्च 2024 में प्रकाश्य अगले अंक के लिए रचनाएँ आमंत्रित हैं। आप कविता, कहानी, आलोचना/समीक्षा, कथेतर गद्य और समाज और संस्कृति जुड़े आलेख हमें भेज सकते हैं।

रचनाएं यूनीकोड फॉन्ट में ही प्रेषित करें।

अनुक्रम

- **इस अंक में 03**

- **कविता**

1. श्रीधर नांदेडकर की कविताएं/ सुनीता डागा/ पृ. ०5
2. ईरान की स्त्री कविताएं/ चयन और अनुवाद श्रीविलास सिंह/ पृ. 20
3. श्रीविलास सिंह की कविताएं/पृ. 27
4. पृथ्वी राज सिंह की कविताएं/ पृ. 33
5. शुभा मिश्रा की कविताएं/पृ. 35
6. क्लाडियॉ रैंकिन की कविताएं/चयन और अनुवाद यादवेंद्र/पृ. 36
7. मराठी कविताएं / चयन और अनुवाद विजय नगरकर / पृ. 38
8. हिमांशु विश्वकर्मा की कविताएं/पृ. 42
9. हर्षिल पाटीदार की कविताएं/पृ. 46
10. फिलिस्तीन की कविता/चयन और अनुवाद यादवेंद्र/पृ. 48

- **आलोचना/समीक्षा**

10. हुई मुद्दत कि ग़ालिब मर गया पर याद आता है/ देवेन्द्र आर्य/पृ. 50

- **समाज और संस्कृति**

11. कुमाउनी लोक-साहित्य में घुघुत/ संजय घिल्डियाल/ पृ. 54

- **कथेतर**

12. हिन्दी साहित्य और न्यू मीडिया / लीलाधर मंडलोई से मेधा नैलवाल का साक्षात्कार/पृ. 66

इस अंक में.....

नए साल की शुरूआत के साथ ही अनुनाद भी अपने 17वें वर्ष में प्रवेश कर चुका है। अनुनाद की इस यात्रा में सदा साथ रहे लेखक साथी, सुधि पाठक, सभी स्नेहीजनों को नव वर्ष की शुभेच्छाएं। आप सभी का यह वर्ष भी रचनात्मक रहे।

बीते दिनों तकनीकी असुविधाओं के चलते अनुनाद और आप सभी का सहज संवाद बाधित रहा, अब इन तकनीकी असुविधाओं का समाधान हो गया है। अनुनाद अब नियमित रूप से आप सभी के बीच रहेगा। अनुनाद की शुरूआत के समय न्यू मीडिया भी अपने शुरूआती दौर में था। बीते दशक में न्यू मीडिया काफ़ी समृद्ध हुआ है। समय के तेज़ी से बदलते इस दौर में अनुनाद के पुराने प्रारूप में भी परिवर्तन हुआ है। उसी परिवर्तन के फलस्वरूप अनुनाद अब कविताओं के साथ-साथ साहित्य की अन्य विधाओं की रचनाओं को भी प्रकाशित करने की स्थिति में है। अनुनाद पर प्रकाशित होने वाली रचनाएं अब इस समग्र अंक के रूप में भी आप सब के सामने हैं।

यह अंक संयुक्तांक(जुलाई-दिसम्बर)2023 है। अनुनाद का प्रयास हमेशा ही विविध भाषाओं की साहित्य, कला एवं संस्कृति को समाहित करने का रहा है, उसी क्रम में इस अंक में भी मराठी, ईरानी, फिलीस्तीनी, अंग्रेजी से अनूदित कविताएं यहां शामिल हैं।

सुनीता डागा और विजय नागरकर द्वारा मराठी के सुपरिचित कवियों के हिन्दी अनुवाद इस अंक में हैं।

श्रीविलास सिंह अच्छे अनुवादक के साथ-साथ समर्थ कवि भी हैं, इस अंक में वे अनुवादक और कवि, दोनों ही रूप में हमारे साथ हैं।

यादवेंद्र के दो अनुवाद इस अंक में हैं। हम सभी के लिए हर्ष का विषय है कि शीघ्र ही उनके द्वारा अनूदित फिलीस्तीन की कविताओं का संग्रह भी हम सभी के बीच होगा।

पृथ्वी राज सिंह किसान और जन सरोकारों के लिए प्रतिबद्ध सामाजिक कार्यकर्ता हैं। पहाड़ की सौंधी- सौंधी महक से पगी उनकी कहन में हिन्दी में दुर्लभ होती विट सहज ही दिखाई देती है। उनकी कुछ कविताएं इस अंक में हैं।

शुभा मिश्रा पेशे से वकील हैं । मन को टोहती-सी उनकी कुछ कविताएं इस अंक में हैं।

हर्षिल पाटीदार संभावनाशील युवा कवि हैं, उनकी कुछ कविताएं इस अंक में हैं।

हिमांशु विश्वकर्मा शोध- छात्र और पहाड़ की लोक कलाओं से जुड़े कार्यकर्ता हैं। उनकी कविताएं इस अंक में हैं, जिनमें लोक भाषा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

हिन्दी के प्रतिष्ठित ग़ज़लगो देवेंद्र आर्य ने ग़ालिब पर एक लम्बी टिप्पणी हमें सौंपी है, जो इस अंक में है।

संजय घिल्डियाल इतिहास के अध्येता हैं और कुमाऊं विश्वविद्यालय में पढ़ाते हैं। कुमाउनी लोक संस्कृति में घुघुत पक्षी के महत्व को दर्शाता लेख इस अंक में है। सम्पूर्ण उत्तराखंड में घुघुत पक्षी संदेशवाहक के रूप में प्रसिद्ध है, यहां की स्त्रियों के जीवन में इसका विशेष महत्व है। पुराने समय में जब संचार के माध्यम नहीं थे और ना ही शिक्षा का इतना प्रचार-प्रसार था, तब इस घुघुती की उदास आवाज़ सुनते ही स्त्रियों को अपने मायके की याद आने लगती थी-

घुघुती घुरूंण लागि म्यारा मैत की ।
बौड़ी-बौड़ी ऐगै ऋतु, ऋतु चैत की ।।

न्यू मीडिया और हिन्दी साहित्य के संबंधो के विषय में लीलाधर मंडलोई के साथ मेधा नैलवाल की वार्ता इस अंक में है।

इस बीच हिन्दी में इंटरनेट और ब्लॉगिंग की शुरुआत करने वाले रवि रतलामी (रविशंकर श्रीवास्तव) हमें छोड़ गए। अनुनाद ने जब ब्लॉग के रूप में शुरूआत की थी, रवि जी का निर्देशन हमें मिला था। अनुनाद उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

- मेधा नैलवाल

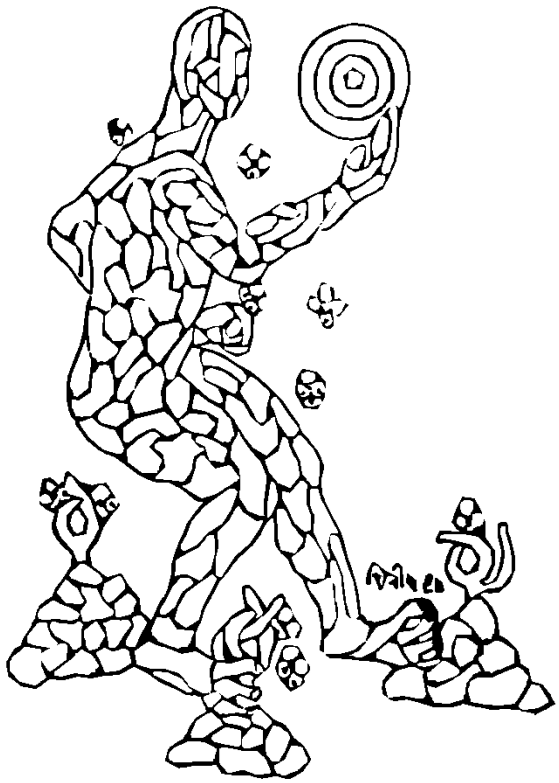

श्रीधर नांदेडकर की कविताएं

अनुवाद- सुनीता डागा

प्रख्यात मराठी कवि श्रीधर नांदेडकर की कविताओं के हिन्दी अनुवाद का पुस्तक रूप में प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना है। मराठी से अधिक यह हिन्दी समाज के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि नदी या भाषा वही पृथुला होती है, जिसमें अनेक नदियों या भाषाओं के जल आकर मिलते रहते हैं। किसी भी इतर भाषा से अपनी भाषा में रूपान्तर अपनी भाषा को नयी, भिन्न उर्वर दृष्टि तथा चेतना और भावबोध से सम्पन्न करता है। श्रीधर नांदेडकर की कविताएँ हिन्दी कविता को नये भावबोध से परिचित कराती हैं। सुनीता डागा के समर्थ एवं समतुल्य अनुवाद मराठी कविता के एक पृथक स्वाद से हमें समृद्ध करते हैं। श्रीधर नांदेडकर की कविताएँ सूक्ष्म अवलोकन के साथ साथ कहन के नये तरीक़ों का आविष्कार करती है और समकालीन जीवन के लिए एक नये रूपक की खोज करती है। इन कविताओं का मूल स्वर दुख और यंत्रणा है, परंतु साथ ही साथ गहरा अनुराग और जीवन के प्रति लालसा तथा करुणा निरन्तर उस स्वर को थामे रहते हैं:

नींद में डूबे बच्चों पर
रात्रि में जग पड़ा पिता
ओढ़ाता है चद्दर ममता से भरकर

कवि की तीक्ष्ण दृष्टि का प्रकटीकरण आकस्मिक रूप से उन स्थलों पर होता है, जहाँ पहले से कोई कथा या आख्यायिकाएँ अथवा प्रसंग उपस्थित नहीं हैं : एक वृद्ध पंछी लड़खड़ाते हुए लपकेगा, या, कोई शाम होती ही है ऐसी निर्मम; या,हथेली पर जले कपूर का निशान। यह संग्रह ऐसे ही त्वरापूर्ण, उद्वेगमय बिम्बों से भरा है। पीड़ा, कुछ खो देने का दुख, विस्थापन इस संग्रह के मूल भाव हैं जो अनेक छवियों में व्यक्त हुए हैं। यहाँ एक सौम्यता और धैर्य है जो सत्तर के दशक की कविता से सर्वथा भिन्न प्रकृति का द्योतक है। लेकिन यहाँ भी कविता या काव्य एक स्थायी विषय है उन्हीं दशकों का स्मरण दिलाता हुआ। कवि ने कविता की वनस्थली के अनेकानेक रूपक प्रस्तुत किए हैं—जूठे हाथों से ही लिखनी पड़ती है उम्र भर कविता; और एक वायलिन बचती है पीछे पूरी उम्र बिना बजी हुई।

इनमें से अनेक कविताएँ पाठक को बेचैन कर देती हैं और उसका पीछा करती हैं—अखंड दीप की तरह मेरे यातनागृह के अँधेरे में / बेटी की ध्वस्त गृहस्थी को देख वापसी की राह पकड़ता पिता/ऐसे असमय में हिचकोले खाते पानी का एक गीला घड़ा फूट गया... ।

हिन्दी में प्रकाशित होकर श्रीधर नांदेडकर की ये कविताएँ सहृदय पाठकों को एक बार पुन: मराठी कविता की ओर प्रेरित करेंगी। चंद्रकांत पाटील, निशिकांत ठकार, रणसुभे, थोरात सरीखे मराठी भाषी अनुवादकों के साथ अब तुषार धवल, सुनीता डागा जैसे हिन्दीभाषी अनुवादकों की सक्रियता मराठी के विविध महान काव्य रूपों से हिन्दी पाठकों को सम्पन्नता प्रदान करेगी। अनेकानेक पंखों की परछाइयाँ हमारे आँगन में उतरेंगी।

स्वागत श्रीधर नांदेडकर!

—अरुण कमल

मर्ढेकर की बकरी

कसाइयों की बस्ती लाँघकर
लंबी दूरी तक
पैरों को घसीटने के बाद
मिलता है
दुबारा
मर्ढेकर की बकरी को
चारा खिलाने वाले
कवि का घर
अपने पश्चात्
अपने मेमनों की खातिर
सहेज कर रखना होगा
घास के इस मीठे गट्ठर को
यह सोचते हुए
पढ़ाता है वह
अपनी बेटी को एक कविता
जो शामिल नहीं है
किसी पाठ्यक्रम में

ऐसी संझा होती नहीं है
ऐसा घर अब बचा नहीं है
ऐसा ओसारा ऐसा आँगन
ऐसा दरख़्त नहीं
जहाँ पर बैठकर
बच्चों के स्वप्न में
छोड़ा जा सके
मुक्ताई*की समाधि पर
उड़ती किसी तितली को

बेशक
यह एक बकरी है और
मैं चला आया हूँ
एक लंबी दूरी नापकर
लेकिन
मेरी पीठ पर जो थैला है
उससे ढो रहा हूँ मैं
आभासी दुनिया के
मुफ्तखोर दृश्यों में
मगन हो चुकी
व जुबान झड़ चुकी
एक पीढ़ी को दर्शाते
दु:स्वप्न को

लाँघता रहूँगा नदियों को
रौंदता रहूँगा
समन्दर के तट
पहाड़-खाइयाँ
लेकिन नहीं रुकेगा मेरा
अथक चलते रहना

बचे-खुचे कौवों के शगून
लपक पड़ेंगे तुम्हारी खातिर
तब खुली रखना अपनी खिड़की
हथेली पर चोंच गड़ाकर
उठाने देना भात के ग्रास को
अथाह नीले आसमान तले दौड़ते
स्कूली बच्चों की देह पर
छितराने देना
कविता के शब्द
आनेवाले मौसम में
कोई एकाध डाली भी
अगर लहलहा उठती है
बच्चों की खातिर

उतना ही पर्याप्त होगा
हमारे लिये
कोटर के अँधेरे में
संतोष से भरकर
गर्दन डाल देने के लिये
चलता रहता है जीवन का रेला
कभी टलती नहीं है
सूर्यास्त की बेला
लेकिन
बिदा लेते समय
तुम्हारे लिए
मन-ही-मन
इतना ही कहूँगा मैं कि
उठती रहे घास की महक हमेशा
तुम्हारे लिखनेवाले हाथों से
उसे छोड़ो इधर
गले से लिपटे हाथों को
तनिक हटा दो
परम्परा की आँखों में मुझे
गहरे झाँकने दो
आओ
कुलाँचे भरते हुए
दौड़ पड़ो मेरी दिशा में
तुम्हारे खूरों की मार सहकर
चरता रहूँगा मैं
भाषा की वनस्थली में
***

मीर भाई

एक छप्पर डालकर
चार दीवारें खड़ी कर
एक पेड़ उगाकर
एक पहाड़, एक नदी
जरा-सी चाँदनी, सूरज-चाँद
और रास्ता
इन सबसे
नहीं किया जा सकता है घर खड़ा
नहीं फैलती है छाँव
मीर भाई
क्या मुझे यह कहना होगा तुमसे कि
कविता का घर यूँ और
इतने भर से नहीं किया जा सकता है खड़ा

रात्रि के तीसरे प्रहर में
मित्र का आवेग से भरा फोन बज उठे
उसी भांति पड़ने चाहिए तुम्हारे थपेड़े
थपथप थपथप
एक-के-पीछे-एक
मेरे अनकहे शब्दों की खिड़की पर
इस खत्म होते जाते
रास्ते की शपथ का विस्मरण न हो अब
न बिलगना पड़े एक-दूजे से
इस गहन समय के मोड़ पर
किताब के पन्ने पर भी
वे एक-दूजे की पीठ पर
लटक जाती है
हम तो
हाड-मांस की घनिष्ठ कविताएँ हैं
मीर भाई
एक कविता का
दूजी कविता को सँभालने का यह प्रण
ऐसे अधूरा तो नहीं छोड़ सकते हैं न

छोटा भाई
बड़े भाई को पीठ पर लादे
इसमें केवल क्रमभंग हो सकता है
दुनियादारी का
कविता तो
इत्मीनान से बहती चली जाएगी
धारा के उस पार

और उस पार
नंगे बच्चों द्वारा छोड़ी हुई नावें
तेज गति से बहेगी पानी पर
धुँधली पहाड़ी से ढोल की गमक के साथ
एक आदिम झुंड
चलता जाएगा दूसरी पहाड़ी तक
उनकी मशालों के प्रतिबिम्ब
ढुलेंगे हमारे क़दमों के सामने

एक हाथ छोड़कर
तुम पानी पर छपाक से मारोगे
और आग बन उठेगा पानी
आग पर फैलेगी रोटी की महक
बुढ़िया के रोटी थापते झुर्रीदार हाथों पर
छप्पर के सुराखों से
छितरेगी चाँदनी
सूखे तिनकों के बिछौने पर
उनके बच्चे भी सो जाएंगे

सूरज की आहट से पहले ही
आंगन में उगाए पेड़ से
सफेद परिंदे उड़ जाएंगे
मीर भाई
अब ना मत कहना
आओ
डाल दो
निशंक होकर अपने हाथ
मेरे गले में
***

हमारे रास्तों ने निभाया वचन

हमें सँभालने की कसम थी
गहन रात्रियों को
बंद मुट्ठी खोलकर
मुझे एक इल्ली दिखानी थी
तुम्हें दिखाना था
हथेली पर जले कपूर का निशान

हमें सौगंध थी शब्दों की
इसलिए
समय-असमय बेपरवाह दस्तक दी हमने
एक-दूजे के आहत वर्तमान पर
अँधेरे में बारिश में भीगते
हरे दरख्तों पर के
सफ़ेद पंछी देखे
हमने जिन दिशाओं को रौंदा
उन सभी दिशाओं से
आकुल ध्वनियों को सुना
हमारे रास्तों ने
निभाया वचन
और अवगत कराया
हमें हजारों विकल दृश्यों से
हमें घर की सौगंध थी
इसलिए लौटना पड़ा
***

तरबूज़

ऐसा समय ऐसे दिन नहीं चाहिए थे कि
मेरे किसी भी शब्द से
समकालीन मित्रों को नहीं होता हो कोई बोध
ऐसा कोई बड़ा अपराध तो नहीं था कि
ऐसे निर्वासित होकर
पराये रास्तों को रौंदते भटकते रहे
अपने जादुई झोले में सिमटी
एक अदनी-सी दुनिया कभी भी
सीमित नहीं थी केवल अपने तक ही
पूरे मोहल्ले में किसी के पास न थी
ऐसी कमीज में छुपाई सुर्ख-लाल गेंद को
मित्रों को दिखाकर
अचानक चौंकाना था
लेकिन नहीं सम्भव हुआ

गाँव से बाहर का रास्ता बनाते
इस हवाई-पुल पर से एक गेंद
तैर रही है पहाड़ी के पीछे से
और बिछड़ चुके हैं अब सभी साथी भी
मेरे कदम तेजी से रास्ता नाप रहे हैं
केवल रास्ता ही नहीं
रास्ते के किनारे
पेड़ होगा तो पेड़
इन्सान होगा तो इन्सान
सभी मेरे अपने हैं
खुले रास्ते के किनारे टूटी खाट पर
सोया हुआ है मामू
कम्बल ओढ़कर

उठो मामू
ईश्वर के तरबूज़ का घेरा
पहाड़ी पर
अपना चट लाल रंग बिखेर रहा है
धूप देह पर छितर रही है
तुम्हारा कम्बल ओढ़ा हुआ सिर
ऐसे दिखाई दे रहा है
जैसे उग आई हो तरबूज़ को दाढ़ी
और किसी दूर-दूर तक फैले प्लेटफार्म पर
सोये हुए हो मनुष्यों के झुंड के झुंड
वैसे तुम्हारे सभी तरबूज़
ऊँघ रहे हैं एक कतार में

गहरी नींद में डूबे बच्चों पर
रात्रि में जग पड़ा पिता
ओढ़ाता है चद्दर ममता से भरकर
वैसे एक मैला कंबल
तुम्हारे तरबूजों पर भी ओढ़ाया हुआ है कि
उन्हें ठंड न लगे

मामू उठो
मुझे एक तरबूज दो
बोहनी करो
मेरे काम के घंटे खत्म हो जाएगे
मैं चला जाऊँगा रेल से उसके घर
एक समकालीन मित्र की कही बात
मेरे मन को
कब से टीस रही है कि
उसने छोड़ दिया था
माँ के इस दुनिया से चले जाने के बाद
उसका पसंदीदा तरबूज खाना !

***

इस भ्रम के पेड़ को लांघकर

इस उजाले की सीमा को लाँघते हुए
अभी विश्वास से नहीं कह पा रहा हूँ मैं कि
कौन है
कौन मेरी पीठ पर लदा हुआ है
साँप का डसा भाई या
यह कोई जख्मी कविता है ?
इए भ्रमित पेड़ को लाँघते हुए
नहीं जान पा रहा हूँ कि
यह अपनी ही पगडण्डी है
लालटेन के आगे-पीछे
थरथराते, तेजी से पड़ते क़दमों की
पत्थर-ढेलों से फिसलती आगे चलती
यह निष्प्रभ परछाई क्या अपनी ही है
नही समझ पा रहा हूँ

इस खून के सूखे रिश्ते-सी
नदी को लाँघते हुए
अभी नहीं अंदाजा आ रहा है कि
इस पत्थर पर से कलकल बहता पानी
फिसल रहा था तब
पानी पर ठीक कहाँ पर
यह चाँद का जानलेवा हँसिया ढुला था
उसे पकड़ने की खातिर
पानी के बहाव को तेजी से भेदते हुए
जिधर बहाव ले जाए
उधर ढलककर गई
यही वह जगह है या नहीं
नहीं साफ़ हो रहा है कि
उस पानी में चाँद का हँसिया गुम हुआ था या मित्र
उस पानी में चाँद का हँसिया डूबा था या मित्र
कोई थाह नहीं मिलती है

यह आग यह अरण्य लाँघकर
मैं फिर से इंसानों की बस्ती के निकट आ गया हूँ
यह एक और जाना-चीन्हा पेड़ है
और इस अंतिम छाँव में
मैं नहीं तय कर पा रहा हूँ कि
मेरी पीठ पर से
कुछ क्षणों के लिये मुझे
यहाँ पर क्या टिकाना है
नीले विष की गठरी या
एक जख्मी कविता ?
***

एक वृद्ध पंछी लड़खड़ाते हुए लपकेगा

अपने चूजों को दाना चुगाने की खातिर
टीसते पंखों के साथ घौंसले की तरफ
लपकते पंछी को किससे भय लगता है ?
घेरेदार गोल आँगन में
बारिश में भीगी देह से
पानी की बूँदे टपकने का ?
चकाचक घेरे में
अपने नाखूनों की अभद्र निशानियाँ
छप जाने का ?
पलकों के किनारे से
जिस पानी को लौटाया बार-बार
उसे बहने से रोक न पाने का ?

यह दिन तेजी से गुजर जाएंगे
जल्द ही दस्तक देगी बिछड़ने की बेला
बज उठेगी कोई घंटी इशारे की

तब सभी समझदारी से भरकर फड़फड़ाकर
अपनी-अपनी दिशाओं में लपक पड़ेंगे

सूर्यास्त की दिशा में
एक वृद्ध पंछी
लड़खड़ाते हुए लपकेगा
उसकी छोटी थरथराती परछाई
विलीन हो जाएगी
सांझ के धुँधलके में
बहुत आहिस्ता से
***

भूलन-बेल

कौन था ?
शायद ईश्वर ही होगा
अच्छा, मुँह छुपा रहा था !
वही होगा
सूरज का पहिया
जब फिसल रहा था पहाड़ी पर से
कैंसर अस्पताल के पिछवाड़े के आँगन के
पेड़ के नीचे खड़ा होकर
खिड़की से मेरे पिता को इशारे करता हुआ

और फिर
एक बार उसकी ओर
एक बार मेरी ओर देखते हुए
मुझे पिता दिखाई दिए

इन्सान वही होता है
अलग-अलग रिश्तों के नाम बदलकर
ईश्वर की भूलन-बेल से कोई टला है भला ?

रास्ते पर खड़े होकर
जाने-पहचाने सभी यात्रियों से
अपने ओसारे पर कुछ समय सुस्ताकर
फिर आगे प्रस्थान करने के लिए
कहनेवाला एक वारकरी*
ईश्वर की भूलन-बेल बन जाता है
और एक पताका फरफराती हुई
आँखों से ओझल हो जाती है
सूरज का पहिया खिसककर
कहाँ पर लुढ़क जाता होगा कि
समूचे आसमान से
ऐसी लपटें उठती हैं रंगों की ?

कौनसे नन्हे हाथ होंगे
जो आसमान को पोंछते हुए
अदृश्य ही बने रहते हैं
और घूमता रहता है अँधेरे का फलक
सभी दिशाओं से

मुझे इस हिलते फलक पर
नहीं लिखनी थी इतनी जल्दी
बिदाई की कविता

तुम्हारी खातिर कभी
नहीं ला पाया
ऐसा एक गर्म कोट
हाथ में लेकर
मैं खड़ा हूँ रास्ते पर
ठंड से ठिठुरते
किसी बेनाम इंसान की

खोज में

*वारकरी – तीर्थयात्री
***

कोई शाम होती ही है ऐसी निर्मम

कोई शाम होती ही है ऐसी निर्मम कि
गहरे-स्याह अपमान के बादल
एक-दूजे से टकराते हैं धड़धड़ाकर
फिर जो बिजली गिरती है
उसके रुपहले उजास में
दिखाई देता है
पथरीली सीढ़ी पर रखा
बुझ चुका एक रक्त का दीया
वही पथरीली सीढ़ी
जिस पर बैठकर पिता
निहारते थे मेरी राह

उनकी भीतर धँसी
बिदाई से भरी
आँखें पूछती थी -
फिर कब आओगे ?
मेरे कपकपाते हाथ जैसे कहते थे
आऊँगा लेकिन
पक्का नहीं कह सकता

इन्सान वास्तव में इन्सान
होता ही नहीं है
दो घरों के बीच की वह
एक अकुलाहट होती है

फिर अकस्मात किसी रात्रि में
अपना बहुत आत्मीय इंसान
आटे पर जलते दीये की मद्धिम लौ बना
टिमटिमाता रहता है
वहाँ पर भी कहाँ छूटती है
सहेजने की आस
एक पारदर्शी काँच ज्यों
रखी जाती है घेरा बनाकर

और दिन उगते ही
चोंच में एक सूखा तिनका लिये
उड़ जाती है चिड़िया
***

नदी माँ

किस बात पर इतनी नाराज हो
नदी माँ ?
तुम्हारी कोख में
पला-बढ़ा मैं
मैंने लगाई कई-कई डुबकियाँ तुम्हारे भीतर
मेरे सपनों को सींचकर
तुमने पवित्र बना दिया

तुम्हारी गोद में सिर रखकर
पिता ने आखिरी नींद ली
उनकी राख को तुम में ही
विलीन करते हुए
डबडबाई आँखों से कहा था मैंने
लो सँभालना इसे

मैं तुम्हारा आँचल

सुहागन की तरह
शगुन से भर दूँगा
तुम्हारी धारा में
हजारों दीपों की लड़ियाँ बहाऊँगा
तुम्हारी कावड़ को
ईश्वर के द्वार तक
ढो ले जाऊँगा

अपना रोष त्याग दो
नदी माँ
खुद को सम्भालो
तुम्हारा आवेग से भरकर
यूँ लबालब बहना
बहुत भयभीत करता है
किनारे पर बसे घौंसलों को
बाँध पर से हहराती गिरती हो तुम तब
तुम्हारे निनाद से
कांप उठता है कलेजा
नदी माँ
जिनके आँगन की चहचहाहट भी
अभी थमी नहीं है
जिसने मेरी पीठ पर पैर रखकर
इस जग को देखा है
उस निरीह इन्सान को
ऐसे असमय
मत आवाज दो तुम ।
***

नदी किनारे भटकते लोग

नदी किनारे भटकते लोग
हर समय एक चलते-फिरते घर से
डूबती शाम का आसमान देखते हैं
नीलाभ पर ऊगे किसी तारे को
बतौर निशानी
टोहकर रख लेते हैं
और जिस आँगन जाते हैं
वहाँ पर रख आते हैं दाना-पानी
किसी अनाम की खातिर

नदी किनारे भटकते लोगों को
नहीं हासिल होते हैं हर समय ही
उस पार ले जानेवाले पुल
आँखों-ही-आँखों में सूखा देना चाहते हैं वे
इस पार की अकुलाहट को

नदी किनारे भटकते लोगों को
याद आते हैं
पानी पर हिचकोले लेते
अस्थि-निर्माल्य और दीप
मृत्यु-आस्था तथा फड़फड़ाती जीवन-यात्रा के
प्रतिमानों के रूप में

नदी सूख जाती है तब इन्सान
छटपटाते हुए
अपनी ही रक्त-कोशिकाओं को टटोलते हैं
रेती उलीचते हैं
और नींद में
माँ माँ कहते हुए
चिल्लाते रहते हैं

नदी किनारे भटकते लोग कभी-कभार
रोटी की खातिर
भटक जाते हैं रास्ता

अनभिज्ञ होते हैं वे
सहमे-से खरगोशों की भांति ही
रास्ता लाँघने के नियमों से

उड़ान-पुल के नीचे झुक-झुककर देखते हैं वे
नदी के साथ उसके ही भाइयों ने किये
विश्वासघात के
स्याह-काले पानी को

ऐसे समय
जाहिर है
निवाला अटकता है गले में
बेटी की चौपट हुई गृहस्थी को देख
वापसी की राह पकड़ते पिता की तरह
अरण्य की राह पकड़ लेते हैं
नदी किनारे भटकते
उदास लोग
***

इल्ली चलाते इंसान का बच्चा

उम्र के नौवें वर्ष में
समझ नहीं थी इसलिए
चिल्लाया था मैं जोर से
'कैटर-पिल्लर', 'कैटर-पिल्लर'
कुएँ के मुँह जितने पहिये
चट लाल रंग और दो लारी भरकर मिटटी
उलेचकर अंजुली में भर लेनेवाला
बाँध की यंत्र-सेना में
नया-नया शामिल
आँख झपकते ही सारी मिटटी छितराकर
धड़धड़ाता हुआ अदृश्य हो जानेवाला
एक स्क्रेपर
जिसके नाम का पता लगने पर
कई बार चिल्ला पड़ा हूँ मैं -
'कैटर-पिल्लर' 'कैटर-पिल्लर'

फिर नौवीं कक्षा में
किसी अंग्रेजी कविता को पढ़ाते समय
कहा था मास्टरजी ने कि
'कैटर-पिल्लर' के माने इल्ली होता है
अब जीवन को बूझते समय
समझ में आ रहा है कि
मैं इल्ली चलानेवाले आदमी का बच्चा था

कितना पसीना बहाया
कितना गारा कितनी काली माटी
छहराई रात-दिन
तब जाकर
उग आई मुझसे टहनियां

मैं जिस जगह पर पला-बढ़ा
वहाँ के पंछियों को मैंने
हरे शब्दों से नहलाया
जिन्हें पाठ पढ़ाए
उन सभी बच्चों के स्वप्न में
इल्लियों को छोड़ने की
असहाय कवायद की

कसम से
एक तितली मुझे
इमरान के स्वप्न में भी
उड़ानी थी
उम्र को शैतानियों का शाप था

डायन जैसे हालात ने
उसके गले के
संस्कार के ताबीज को
निगल लिया था
और
उसकी कमीज पर
काले-ठस्स तीरों के चित्र थे
जिनकी नोंक पर बूँदे थी
टपकते हुए रक्त की

किसका बच्चा है इमरान
इसकी पड़ताल करने गया तब
लुकमान भाई
पेड़ के नीचे ट्रैक्टर खड़ा कर
बजरी से भरी ट्राली पर बैठकर
सब्जी के गहरे लाल झोल में
रोटी भिगोकर तोड़ रहा था

मेरे लाख मना करने के बावजूद
बेटे के मास्टरजी आये हैं
इस हुलास में उसने
मुँह के कौर को आधे में ही छोड़ दिया
मैंने अपना हाथ आगे बढ़ाया तब
गले से लिपटे मैले रुमाल से
तीन दफ़ा हाथों को पोंछने के बाद
मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर
वह अपनी ही रौं में
कुछ कहें जा रहा था

और मैं मन-ही-मन बुदबुदाता रहा कि
इन हाथों को गिट्टी पर पटक दूँ
ट्रैक्टर के मुँह पर लाल पोत दूँ
जिन उँगलियों में इतने वर्षों से
पकड़ा था चाक
उन उँगलियों से एक ही बार में चंगिटता हुआ
जोर से चिल्ला पड़ूँ -
'कैटर-पिल्लर' कैटर-पिल्लर'
***

बाँध-1

और इस नंगी-बूची वीरान
निर्जन टेकरी पर
पंछियों के सामने
धान के कनके फेंके जाए वैसे
घर चिन्हित हो गए
चाल का एक सुघड़ नक्शा चिन्हित हो गया

बाँध खड़ा करनेवालों की
यह नई बस्ती
गमक उठी
बच्चों-बुजुर्गों से, मेमनों-मुर्गियों से

स्क्रेपर-डोझर-टिपर
दिन-रात चक्कर काटने लगे

गढ़ी को बचाया गया
झोपड़ियाँ पानी के आने से पूर्व ही
बह कर चली गई

बड़े साहब ने
अज्ञात शक्ति से नियंत्रित हाथों से
बाँध की एक रेखा खिंच दी
और फिर

उस बाँध की विशाल छाया
जहाँ तक पहुँचने वाली थी
जिन पर छितरने वाली थी
जिनके पास जमीन का बित्ताभर टुकड़ा और
बर्तन-बासन थे टूटे-फूटे
जिनके पास केवल
लकड़ी छिलने केऔजार थे
जिनके पास लोहा गलानेवाली
केवल धौंकनी थी
जिनके पास मजदूरी करनेवाले
हाथ-पाँव तथा सिर थे
धूप-बारिश का स्वागत करती
झुग्गियाँ
और मात्र तन भर को ढक सके
इतने कपड़ों वाले बाल-बच्चे थे
उन सभी के लिये
एक मौत की रेखा खिंच दी गई

अपने घड़े-डेगचियाँ उठाएँ
यह उजड़ चुकी बस्ती नष्ट हो गई
बाया अंगूठा सरकारी कागज पर
टिकाकर
चार कौड़ी फटी जेब में डालकर
यह बस्ती गुम हो गई

पंछियों के सामने दाने फेंक दिए जाए वैसे
कुछ घर चिन्हित हुए
कुछ मिट गए
***

बाँध-2

यह करामात नहीं तो
और क्या है ?
एक नीले कागज पर
काली रेखाएँ खिंच दी जाती है
एक खूबसूरत दीवार का
रंगबिरंगी प्रारुप
काँच में सजाकर रखा जाता है
और जादूगर के हाथ पर का रुमाल
आँख झपकते ही जल जाता है वैसे
हाथ-पाँव सूखकर काँटा हो चुके
गरीब बाँध-ग्रस्त आदमी का भविष्य
निमिष मात्र में धूं-धूं कर जल जाता है
यह करामात नहीं तो
और क्या है ?
पाँच सौ साठ रुपये वेतन पानेवाले
किसी क्लर्क की
पुलिस की
तहसीलदार की
पत्नी
पूर्णिमा के दिन
जरी के नक्काशीदार मोर-बूटे की
रेशमी साड़ी पहनकर
बरगद की परिक्रमा लगाती हुई
हर जनम में
इसी पद पर आसन्न पति के
पाने की
कामना करती है

यह करामात नहीं तो
और क्या है ?
तुम्हारा घर पानी में डूबता नहीं है
तुम्हारी जमीन पानी में धँसती नहीं है
तुम्हारा गाँव से कोई नाता नहीं है

कहाँ पर है यह गाँव
पूछने पर तुम साफ़ अकबका जाते हो
किस आदिम आत्मीयता से
तुम्हें बाँध-ग्रस्त का सर्टिफिकेट
बहाल किया जाता है
और डी एड-बी एड की उपाधि पाकर
तुम्हारे शिक्षक बन जाने के पश्चात्
हजारों बच्चों के कल्याण के लिए
तुम अपने प्राण दाँव पर लगा देते हो

यह करामात नहीं तो और क्या है ?
अभी तक
इस बाँध की नींव का अता-पता नहीं है
और किस तरह से
पात्रता-मानदंड विभाग के
चपरासी
क्लर्क
निरीक्षक
कनिष्ठ अभियंता
वरिष्ठ अभियंता
कार्यकारी अभियंता
अधीक्षक अभियंता
सभी के
अपने-अपने गाँवों में
चमचमाते आलीशान
हवादार बँगले
ठाठ से खड़े हो चुके हैं
यह करामात नहीं तो और क्या है ?
तुम्हारे मैले
झुर्रीदार अंगूठों के
कई-कई दफा निशान लिये जाते हैं
जलते जख्मों पर स्याही उड़ेलने की भांति
तुम याचिका के कागजों के पुर्जे थामे
उधार लिये पैसों के सहारे
बसों से शहर के
अनगिनत चक्कर काटते रहते हो
हर बार तुम्हारे सामने नचाई जाती है
काम हो जाने की हरी झंडी
तुम लौट जाते हो
और फिर
तुम्हें घेरने लगता है
नई बसाहट
मंदिर
स्कूल
नए उगते पेड़ का
छाँव का
कोई ठंडा स्वप्न
तुम स्याह अँधेरे में
मेरा घर मेरा घर
कहते हुए चिल्लाने लग जाते हो
और नींद टूटने पर
जो अस्तित्व में नहीं है
उस घर के लिए
रो पड़ते हो
फूट-फूट कर

यह करामात नहीं तो और क्या है ?
***

वरना यह गाँव इस तरह धुँधलाता नहीं

विवशता की पीठ पर
बैठना पड़ा
रुक कहने पर रुकना पड़ा

चलो कहने पर चलना

फिर भी
इस अनचाही भटकन में
आँखें मिचकाते हुए
मित्रता कर ही ली दरख्तों से

पानी परोसनेवाले की आँखों में झाँककर
रीता होने दिया अँजुरी को
और प्यास को बचाकर रखा
दूरदराज की आँखों की खातिर
विवशता थी कि
कहो कहने पर कहा नहीं गया
पहरा था सभी दिशाओं से
इसलिए शब्दों को फरार होना नहीं आया

अनिवार्यता फैली थी आँगन में
इसलिए चार कदम लाँघकर
दानों को चुगा
और उपकार का बोझ ढोया उम्रभर

चारा नहीं था वरना
कौन घर छोड़कर जाना चाहता था
चारा नहीं था
वरना घर की दिशाओं में
कौन लौट आता

अपरिहार्यता ने चोंच ठूंग दी माथे पर
इसलिए जख्मी होकर छलाँग लगाई
तुम्हारे गाँव पर से
चारा नहीं था
इसलिए आँखें भर आई
वरना यह गाँव ऐसा धुंधलाता नहीं था

***

किसी समय के बछड़े का सींग

केवल समन्दर नहीं
नमक और पानी को लाँघकर
इस मिटटी से पीठ फेर लेनेवाले
किसी भी इन्सान को
अब पहले की तरह
उत्कटता से आवाज देने का
मन नहीं होता है
लेकिन रास्ते पर बिछी पलकों को
छुपाना मुश्किल होता है
मेढ़ पर के आम का बौर
आज भी महमहाता है
कैरियों का निशाना साधनेवाली
टोली का कोई सदस्य
मिलनेवाला है आज
मात्र इतना भर जान लेने से

हवाईजहाज से परिंदे उड़ते हुए
उतरेंगे अपने आँगन में
इस आस से भरा
पके बालों वाला आदमी
झाँकता रहता है उदास खिड़की से

और तुम
यहाँ की धूल-गंदगी को
नाक-भौं सिकोड़ते हुए
ऐसे ठाठ से आते हो
जैसे ठहरे हुए हो किसी लॉज में

इस घर ने बिछाई हुई होती है
अपनी आँखें
तुम्हारे रास्ते पर
और तुम्हारे तेवर ऐसे
जैसे उतरे हो
किसी ग्रह पर से

ऐसे में लगने लगती है घुन
बूढ़े के स्वप्न में निद्रिस्त
पिता के नसीब को

और
पूरी उम्र
अपने खून को सूखा देने के बाद अब
उसी का किसी समय का बछड़ा
अपने धारदार सिंग लिये
तेजी से लपकता है
उसके थकेहारे कलेजे की दिशा में
***

पंखों को ढूँढनेवाला इंसान

अपनी पसलियों को टटोलते हुए
पंख तलाशने वाले
उन्हें न पाने पर
हाथ को ही पंख की तरह
हिलानेवाले दुःखी इन्सान को
सम्मोहित करनेवाला आधा ग्लास आसव
और
अंजल भर सिगरेट का धुआँ
कबूल करना पड़ता है
उस धुएँ में टूटे पंख का
रेशमी फाया लहराता है तब
अपने हाथों की बर्फ की पेटी को खोलकर
सहेजकर रखना पड़ता है
मिटटी में सहजता से घुल जानेवाली
किसी प्रच्छन्न कविता को

अपने ही लोगों द्वारा घोंपे गए
इन्सान के दिखने पर
बहुत सावधानी से निकालना पड़ता है
उसकी पीठ में धँसे छुरे को
अंधड़-तूफान में फरफराती
मोमबत्ती के इर्दगिर्द
अँजुरी को धरा जाए
वैसे जी-जान से
सम्भालना पड़ता है
अपने आत्मीय कवि को
इस निर्मम समय के अंधकार में
***

ईरान की स्त्री कविताएं

अनुवाद- श्रीविलास सिंह

(सभी कविताओं का अंग्रेज़ी अनुवाद महमूद कियानुश का है)

फ़रोग फ़रूख़ज़ाद

मैं पुनः स्वागत करूंगी सूर्य का

मैं पुनः स्वागत करूंगी सूर्य का
स्वागत करूंगी उस धारा का जो कभी बहती थी मुझमें
उन बादलों का जो थे मेरे लहराते हुए विचार
बगीचे के पॉपलर वृक्षों की कष्टमय वृद्धि
जो गुजरे मेरे संग अकाल के मौसमों से हो कर।
मैं स्वागत करूंगी कौवों के झुंड का
जिन्होंने दिया है मुझे बाग से आती रात्रि की सुगंधि का उपहार
और अपनी माँ का जो रहती थीं आइने में
और थी मेरी वृद्धावस्था का प्रतिबिम्ब।
एक बार फिर मैं धरती का स्वागत करूंगी
जो फुला लेती है अपना प्रज्ज्वलित उदर हरे बीजों से
मेरे पुनर्सृजन की लालसा में।

मैं आऊंगी, मैं आऊंगी, मैं ज़रुर आऊंगी
मेरे केशों से उड़ रही होगी मिट्टी की सुगंधि
मेरी आँखें सूचित कर रही होंगी अंधेरे की सघनता
मैं आऊंगी दीवार के दूसरी तरफ की झाड़ियों से चुने गुलदस्ते के साथ।
मैं आऊंगी, मैं आऊंगी, मैं ज़रुर आऊंगी
दरवाज़ा प्रदीप्त होगा प्रेम से
और मैं एक बार फिर स्वागत करूंगी उनका जो प्रेम में हैं,
स्वागत करूंगी उस लड़की का जो खड़ी है
डयोढ़ी की लपटों में।
****

सिमिन बेहबाहनी

वह आयी गरिमामय ढंग से

वह आयी गरिमामय ढंग से
चमकीले नीले रेशमी परिधान में;
अपने हाथ में लिए जैतून की एक शाख़,
और शोक की ढेरों कहानियाँ अपनी आँखों में।
उसकी ओर भागते हुए, मैंने अभिवादन किया,
और ले लिया उसका हाथ अपने हाथों में:
अब भी उसकी धड़कन महसूस की जा सकती थी
उसकी धमनियों में;
और अभी भी गर्म थी उसकी देह जीवन की ऊष्मा से।

“किंतु तुम तो मर चुकी हो, माँ,” मैंने कहा;
“ओह ! बहुत वर्ष पहले तुम मर गई थी !”
न तो उससे आ रही थी शव लेपन की गंध,
न ही वह लिपटी थी कफ़न में।

मैंने एक नज़र डाली जैतून की शाख़ पर;
उसने उसे लहराया मेरी ओर,

और मुस्कराहट के साथ कहा,
“यह है शांति की प्रतीक, इसे लो।”

मैंने उसे ले लिया उससे और कहा,
“हाँ, यह है प्रतीक....”, जब
मेरी आवाज़ और शांति भंग हो गई
एक घुड़सवार के आक्रामक आगमन से।
वह रखे था एक कटार अपने परिधान के नीचे
जिस की सहायता से उसने बनाया एक डंडा
जैतून की डाल से और उसे देखते हुए
कहा ख़ुद से :
“बहुत ख़राब नहीं है यह बेंत
गुनहगारों को सजा देने हेतु !”
नाटकीय पीड़ा की एक वास्तविक छवि !
फिर, छिपाने को डंडा,
उसने खोला अपने घोड़े की जीन का झोला।
उस में, या अल्लाह !
मैंने देखा एक मृत कबूतर, एक रस्सी बंधी थी
उसकी टूटी हुई गर्दन में।

मेरी माँ दूर चली गई ग़ुस्से और शोक में;
मेरी आँखों ने अनुगमन किया उसका;
विलाप करने वालों की भाँति वह पहने थी
एक परिधान काले रेशम का।
****

ज़ालेह एस्फ़ाहानी

जंगल और नदी

“मैं चाहता हूँ कि मैं होता तुम्हारे जैसा,”
कहा जंगल ने
आप्लावित नदी से
“सदैव यात्रारत,
सदैव देखता नए दृश्य ;
बहते हुए समुद्र के पवित्र राज्य की ओर;
जल का साम्राज्य;
जल,
जोश और जीवंतता से भरी
जीवन की चेतना,
प्रकाश की तरल नीलमणि
अनंत प्रवाहयुक्त...”

“किंतु मैं क्या हूँ?
मात्र एक बंदी,
ज़ंजीरों से बँधा हुआ धरती से।
चुपचाप मैं वृद्ध होता जाता हूँ,
चुपचाप मैं क्षय होता हूँ और मर जाता हूँ,
और बहुत दिन नहीं होंगे
जब मेरा कुछ भी नहीं रहेगा शेष
एक मुट्ठी राख के अतिरिक्त।”

“ओ जंगल, अर्द्ध-सुप्त, अर्द्ध-जागृत”,
चिल्लाई नदी,
“मैं चाहती हूँ कि मैं होती तुम,
आनंद लेती एकाकीपन में
एक मरकतमणि जैसे,
और चमकती हुई चाँदनी रातों से;
एक दर्पण हो कर
परावर्तित करती वसंत का सौंदर्य;
होती प्रेमियों का एक छायायुक्त मिलनस्थल।”

तुम्हारा भाग्य, एक नया जीवन हर वर्ष;

मेरा जीवन, भागते रहना स्वयं से हर समय
बौखलाए हुए;
और क्या है मुझे लाभ
इस तमाम अर्थहीन यात्रा का?
आह...सदैव बिना शांति और विश्राम के !"

"कोई कभी नहीं जान सकता
क्या महसूस करते हैं दूसरे;
किसे परवाह होती है पूछने की
किसी राह चलते से कि
क्या उसका सचमुच अस्तित्व था
अथवा था वह मात्र एक परछाई?"
अब एक राहगीर
उद्देश्यहीन चल कर आता हुआ छाया में
पूछता है स्वयं से,
"मैं कौन हूँ? एक नदी? एक जंगल?
अथवा दोनों?
नदी और जंगल?
नदी और जंगल !"
****

शादाब वज़्दी

मेरी प्रतीक्षा करो

और मैं जीवित हो उठती हूँ पुनः
अपनी देह की क़ैद से बाहर,
कामना के क्लेश से परे,
फलों से लदी डालियों के मध्य
एक क्षण में ही,
स्वयं सूर्य से उत्पन्न;
और एक झाड़ी की छाया में
जो ले गई प्रेम की शुद्ध सुगंधि
सीमाहीन मैदानों में;
और मेरे हाथ,
दो राह दिखाते पतवार
तेज़ी से जाते हुए प्रेम की हरी भरी
भूमि की ओर;
और मेरी आत्मा, मेरा हृदय
गा रहा
गा रहा।

प्रतीक्षा करो मेरी
क्षितिज की नीली रेखा के साथ
जो ले जाती है चाँद के सुनहले पथ को
सितारों के चमचमाते उत्सों की ओर।
और भोर के झरनों से
उस क्षण जब सूर्य उगता है
और बुनता है प्रकाश के धागे
एक शाख़ से दूसरी शाख़ तक
लिए हुए उन्हें दानों की भाँति
घोंसलों के भीतर
जहाँ चूजे,
रोशनी और आकाश की कामना में
चहक रहे,
चहक रहे।

प्रतीक्षा करो मेरी
मेरी आवाज़ के चमकीले सिरे पर
जो आकाशगंगाओं के रहस्य के ऊपर से
प्रवाहित होती है धरती पर
अवशोषित कर लिए जाने को
प्रगति की कलियों द्वारा

और बाग के सोने वालों को
देने को समाचार सूर्योदय और जीवन का।

प्रतीक्षा करो मेरी
मैं जीवित हो उठूँगी पुनः।
****

शहनाज़ अ'लामी

जादुई सूटकेस

मैंने अपने साथ लिया एक सूटकेस
हल्का, बहुत हल्का,
बच्चों के कपड़ों के दो या तीन जोड़े,
जार्जेट का एक सफ़ेद परिधान,
अपनी माँ की एक धुंधली सी तस्वीर,
पहने हुए हिजाब,
और पारंपरिक चीजों की एक पूरी लिस्ट
नौरोज़* के उत्सव के लिए,
ऐसा न हो कोई चीज भूल जाए;
यही सब जो था मेरे पास,
अथवा जो लोग सोचते थे कि मेरे पास था,
मेरे सूटकेस में
जिसके साथ मैंने छोड़ दी
उदार सूरज की भूमि।
मेरा सूटकेस था,
अथवा जैसा लोगों ने सोचा कि वह था,
बहुत, बहुत हल्का;
लेकिन कितनी बड़ी गलती थी !
आपने निश्चय ही देखे होंगे
पेशेवर जादूगरों के कार्यक्रम;
वे रखते हैं अपनी उँगलियाँ
अपनी क़मीज़ की बाहों पर,
और निकाल देते हैं हर वह चीज जिसका आप नाम लें:
चिड़िया, ख़रगोश, सभी रंगों के रूमाल,
कभी कभी क्रिस्टल का जग,
कभी पत्थर का एक टुकड़ा,
आग, पानी, मिट्टी,
फूल, काँटे और ढेरों और चीज़ें;
ऐसा ही था मेरा ख़ाली जादुई सूटकेस।

अब इस बात को हो गया लगभग एक जीवन
कि उसी सूटकेस के भीतर से
मैं निकालती रहीं हूँ वह हर चीज जो मैं चाहती हूँ :
इस्फ़ाहान का शानदार वसंत
और इसके बाहरी इलाक़ों में स्थित
जीवनदायी बगीचे;
और शिराज़ की रंगबिरंगी शरद
और इसके संतरे के वृक्षों की सुगंध;
पार्सिपोलिस* के प्राचीन खंडहर;
अपने ऐतिहासिक अभिलेखों संग
बागेस्तान पर्वत;
शहज़ादी शीरीन का महल;
ना'इन में ग़रीब गाँव **चाम***
एक किसान लड़की
फ़ातिमा के चिथड़े वस्त्र,
और उसके साथ ही बच्चों का एक झुंड,
जो सभी थे उसी सूटकेस के अंदर।

मैं उन्हें बाहर निकालती हूँ;
मैं बैठती और बतियाती हूँ उनसे,
मैं जीती हूँ उनके संग;

और जिस क्षण आता है कोई और,
वे सब वापस भाग जाते हैं सूटकेस में,
वही सूटकेस जिसे लोग सोचते हैं
होना चाहिए बहुत हल्का
और लगभग ख़ाली।

जब मैं बनाऊँगी अपनी वसीयत
मैं कहूँगी कि मेरा सूटकेस
दफ़नाया जाए मेरे साथ।
निःसंदेह वे कहेंगे :
"उसका जीवन था एक पागलपन;
और उसकी वसीयत है मूर्खतापूर्ण !
किस तरह की वसीयत है यह !
जो चाहती है एक सूटकेस
परलोक में?"

उन्हें कहने दो जो वे कहना चाहें;
आख़िर,
कौन जानता है रहस्य
प्रेम के पेशेवर जादूगर का?

क्या यह सच नहीं कि 'प्रेम
वेधशाला है ईश्वर के रहस्यों की?"*
***

* फ़ारसी नववर्ष (अंग्रेज़ी कैलेंडर में २१ मार्च को शुरू होता है)।
* राजा डेरियस (दारा) की राजधानी
* ईरान में क़ालीनों के लिए प्रसिद्ध एक गाँव
* प्रसिद्ध कवि जलालुद्दीन रूमी की 'मसनवी' से एक प्रसिद्ध पंक्ति।

ज़िला मोस'ईद

शर्म

आकाश के नीलेपन से अपरिचित,
धरती की चमकती हरियाली से अपरिचित,
मनुष्य के अपनी देह ढकने के इतिहास से
अपरिचित,
मैं खड़ी हुई हूँ
बर्फ के एक गोल घेरे में,
घिरी हुई शोक और दुश्चिंताओं से;
नग्न, प्राचीन और एकाकी,
मैं ढोती हूँ अपने कंधों पर
हज़ार साल पुराना बोझ
शर्म का,
इज्जत ढकी होने का।
ओ नींद की माताओं, जिनकी हड्डियाँ हैं
छुपने के प्राचीन स्थान
मरी हुई अंतःप्रेरणाओं के,
देखो कैसे वे उघाड़ते हैं, प्राचीन जड़ें,
धीरे धीरे पर दृढ़ता के साथ
बेधते हैं बर्फ को।
****

मीना असदी

मेरे लिए अंगूठी है एक बंधन

मैं नहीं सोचती जा-नमाज़ के बारे में,
पर मैं सोचती हूँ सैकड़ों सड़कों के लिए
जो गुजरती हैं
रेशम के गुच्छों से लदे वृक्षों से भरे
सैकड़ों बगीचों से;

मैं जानती हूँ किबला[१]
इसकी जगह है वहाँ जहाँ है ख़ुशी;
और मैं पढ़ती हूँ नमाज़ रोज़
रेशमी सड़कों पर
गौरैयों के संगीत के साथ।

मैं नहीं जानती क्या है अर्थ स्नेह का,
अथवा क्या हो सकता है अंतर
एक भूमि और दूसरी के बीच।
एकाकीपन है जिसे मैं कहती हूँ ख़ुशी
और मरुभूमि जिसे मैं कहती हूँ घर,
और जो कुछ भी करता है मुझे दुःखी, उसे मैं
कहती हूँ प्रेम।

मेरे लिए पाँच पाउंड के एक नोट का अर्थ है धन;
मैं हर उस व्यक्ति को अंधा कहती हूँ
जो तोड़ता है कोई फूल;
और मेरी निगाह में एक जाल
जो अलग करता है मछली को जल से
है एक हत्यारा।

मैं देखती हूँ समुद्र को ईर्ष्या से
और कहती हूँ स्वयं से
"कितनी छोटी हो तुम !"
संभवतः समुद्र भी सोचता है ऐसा ही
जब वह मिलता है महासागर से!

मैं नहीं जानती क्या है रात्रि,
लेकिन दिन क्या है मैं समझती हूँ अच्छे से,
मेरे लिए फूलों की एक झाड़ी है एक गाँव
और स्मृतियों के बाग़ में टहलना, स्वतंत्रता,
और कोई भी अर्थहीन मुस्कान, आनंद।

मेरे लिए हर व्यक्ति जिसके पास है एक पिंजरा
है एक जेलर;

और हर वह विचार
जो पड़ा रहता है व्यर्थ मेरे मस्तिष्क में
लगता है एक दीवार;
मेरे लिए अंगूठी है एक बंधन।

मैं नहीं सोचती जा-नमाज़ के बारे में,
पर मैं सोचती हूँ सैकड़ों सड़कों के लिए
जो गुजरती हैं
रेशम के गुच्छों से लदे वृक्षों से भरे
सैकड़ों बगीचों से।
***
१. वह दिशा जिस ओर मुँह कर के नमाज़ पढ़ी जाती है (पवित्र काबा की दिशा)

मेमनत मीरसदेगी

एक चमकती खिड़की की तस्वीर

मैं गई खिड़की के पास और कहा मैंने :
ओह ! कितनी शानदार धूप है !
कितना चमकीला दिन !
कितनी समृद्ध पल्लवित ख़ुशी
है उपस्थित हर चीज में।

मैंने कहा स्वयं से
"मैं बढ़ूँगी पौधों के संग,
मैं गाऊँगी चिड़ियों के संग,

मैं बहूँगी पानी के साथ।”
मैंने कहा स्वयं से :
“मैं पियूँगी दिन को -
यह स्वर्णिम किनारों वाला कटोरा
जो भरा है किनारे तक धूप से -
एक घूँट में।

मैं खड़ी रही खिड़की के पास
मैं खड़ी रही,
और फिर मेरा छोटा सा कमरा
भरने लगा उदासी से,
- गाढ़ा, काला धुआँ -
और मेरी कामना
बढ़ने की,
गाने की,
बहने की,
थी तस्वीर एक चमकती खिड़की की
इस घिरी हुई जगह में
इन चार दीवारों के मध्य।

भोर का भारी आकाश
अपनी उदासी और
विलाप करती बारिश के साथ
धीरे धीरे रो रहा था ।
***

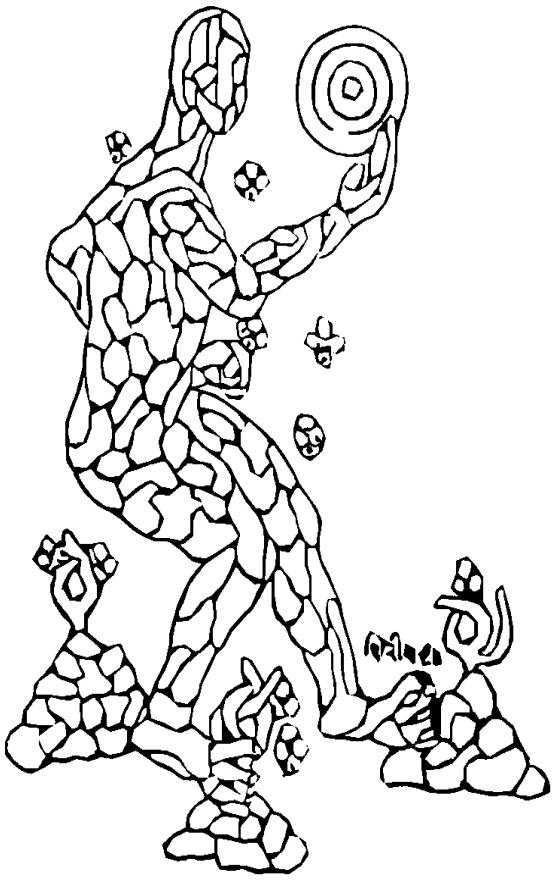

श्रीविलास सिंह की कविताएं

धूप में

धूप दूर

दृष्टि के दूसरे छोर तक पसरी है,

आग का एक समुद्र उग आया है

खेतों खलिहानों में,

हवा टकराती है

जैसे अग्निपक्षी लिपट गया हो चेहरे से।

मौसम तो आते जाते हैं

ठंड के बाद गर्मी

और उसके बाद बरसात,

पर सोचता हूँ

अगर यह धूप ठहर गई यूँ ही

किसी ढीठ अतिथि की भाँति

तब

तब क्या होगा?

जब धरती की गोद में बची

थोड़ी बहुत आर्द्रता को भी सोख लेगी

यह आग तब...तब?

सुन रहा हूँ

पानी ले कर जाते टैंकर की खड़खड़ाहट्

सोच रहा हूँ

यह हमारे 'केपटाऊन' की आहट तो नहीं ?

हरियाली का वितान हमने नष्ट किया है

अब धूप हमारी तलाश में है

अपने चेहरे पर महसूस कर रहा हूँ

उसकी ऊष्म साँसें ।

***

क्रांति एक शब्द भर है?

इस निर्मम समय में

नहीं बचे हैं कोई रंग और अर्थ शब्दों में,

न ही उन विचारों में

जिन्हें वहन करते हैं ये शब्द

सारे अर्थ हैं सुविधा के अर्थ

और सारे रंग अवसरों के,

पुरानी सब किताबें हो चुकी हैं बदरंग,

उनके जर्जर पन्नों को

खा कर समय के कीड़ों ने

कब का अपठनीय और संदर्भहीन कर दिया है।

'सुविधा' और 'समझौता' यही दो शब्द

पढ़े जा सकते हैं आज भी।

आँख पर पट्टी बाँधे देवी को हटा कर

बुलडोज़र और एनकाउंटर बिठा दिए गए हैं

न्याय और व्यवस्था के आसनो पर,

मारे जाते लोग छोड़ दिये गये हैं

हृदयहीन भीड़ की दया पर,

सड़कों पर स्त्रियाँ निर्वस्त्र की जा रही हैं

जलाई जा रही हैं बस्तियाँ

राजा राजनय में व्यस्त हैं

और मंत्री विचार विमर्श की लफ़्फ़ाज़ियों में,

हमारे लिए सब कुछ है बस ब्रेकिंग न्यूज़,

ढेरों कवि और विचारक

असरहीन हो चुके मंत्रों का पाठ करते

दुहरा रहे हैं प्राचीन कर्मकांड

दरबारियों की निर्लज्ज हँसी

कानों को बहरा किए दे रही,

विद्रोह और संघर्ष के आह्वान की

अधिसंख्य कविताएँ बदल चुकी हैं

राजाधिराज के स्वस्तिवाचन में

स्वार्थ और कायरता ने बदल दी हैं

सारी प्रतिबद्धताएँ,

सुविधाभोग के इस विद्रूप समय में

क्रांति बस एक शब्द भर है ।

***

लौटते हुए

परिदृश्य वैसा ही था

जैसा छोड़ कर गए थे हम एक दिन,

जैसे किसी दिन निकल गए थे राजकुमार

बोधि की तलाश में,

हमारा निकलना हमें भी कहाँ पता चला

जब निकले थे कहाँ थे अवगत

कि अब जब आना होगा भी तो

आएंगे यात्री की तरह

हमारी परिचित धरती ठहरी होगी

उन्ही कोमल क्षणों की आभा में

स्मृतियों की चौखट पर खड़ी।

मुख मोड़ कर चले जाते लोग

अभिशप्त होते हैं

पुनः न लौट पाने को

प्रेम के उस ठहरे हुए पल में,

उम्र भर भटकते यायावर

तलाशते हैं अपना निर्वाण

कहाँ बुझती हैं लालसाएं

महत्वाकांक्षायें रिक्त कर देती हैं

सारे स्नेह कोष

देह ढह जाती है

शिखर तक पहुंचने की इस यात्रा में

और लौट कर आने तक

आगे बढ़ चुका होता है वह समय

जिसमें ठहरे हुए होते हैं हम वर्षों से।

यात्रा जारी रहती है

यात्रियों के चले जाने के पश्चात भी,

शेष होती है

स्मृतियों में ठहरे क्षणों की प्रतीक्षा।

***

धुएँ की लकीरें

रेत का सीमाहीन विस्तार

आँखों में भर गया है

धुएँ की लकीरों से भरा है असमान

एक व्यर्थताबोध है स्थायी भाव मन का।

धरती अपने सारे दुःखों को सम्भाले घूम रही है

एक पाँव पर और

और हम हैं अपने ही रक्त में डूबे

नयी दुनिया की प्रतीक्षा में।

पानी से नम हुई मिट्टी में होती है शेष

बीजों के अंकुरण की आशा

खून से भीगी मिट्टी में

ख़त्म हो जाती हैं जीवन की सारी संभावनायें।

हमारे स्वप्नों में हैं

भविष्य के फूलों की बजाय

बमों और मिसाइलों के चित्र

घृणा के व्यापारी हमें सिखा रहे

प्रेम के अभिनव मंत्र।

राजनीति और सत्ता के कालनेमि

नहीं पहुँचने देंगे संजीवनी हम तक।

बहुत कठिन होता है

अपने समय का सामना करना

और अपने चुनावों का भी।

हमारी बोई गई फसलें

हमें ही काटनी होती हैं

और हमें ही करना होता है

अपने दुखों का इलाज,

सिर्फ़ शुभेच्छाओं से नहीं बदलता भविष्य

और मात्र प्रार्थनाओं से दूर नहीं होते

दुःख।

***

युद्ध

रात के वनों में

बारिश आती है सहमी हुई सी

जैसे चाँदनी पिघल रही हो धीरे धीरे और

दूर तक फैले काले समुद्र में टिमटिमा रही हों

मछलियों की आँखें ।

कोई गिरता हुआ उल्कापिंड लिख देता है आसमान पर

बिजलियों के संस्मरण और सब कुछ मिट जाने के बाद भी

मुट्ठी भर प्रकाश बचा रहता है आँखों में

जैसे तुम्हारे चले जाने के बाद भी

बचा रहता है एक उजला एहसास देर तक ।

पहाड़ की उदास और एकाकी चोटियों पर

जहाँ अपने मज़बूत कंधों पर उठाए

हमारी वृद्ध और हिंसक राजनीति का बोझ,

जाग रहे होते हैं कुछ युवक

सारी राजनीति और कूटनीति से परे

अपने प्रेम की आकाशगंगाओं में तैरते

जैसे तैरती हैं काग़ज़ की किश्तियां

बच्चों की आँखों की नदी में।

भावनाओं के सबसे कोमल तन्तुओं से ही बनती हैं

दुनियाँ की सबसे मज़बूत दीवारें

इतिहास के सबसे निर्जन पलों में लिए गए होते हैं

मनुष्यता के दुखों की सृष्टि के सबसे कुरूप निर्णय

और युद्धों का घोषित लक्ष्य हमेशा ही होता है

उन्हीं का हित जो मिटा दिए जाते हैं सबसे अधिक क्रूरता से

इन युद्धों के दौरान ।

बूढ़ी और नपुंसक महत्वाकांक्षाएँ होती है

सबसे अधिक रक्तपिपासु और

युवा सपनों के ढेर पर खड़े तमाम तानाशाह

जब मानवता की लोरी गुनगुना रहे होते हैं

धर्म और राष्ट्र की लम्पट दीवारों के दोनो ओर

बह रही होती है पीड़ा की एक नदी

हत्या और ध्वंश की बाढ़ के गुजर जाने के बाद।

रात के वनों में

अब भी पिघलती है चाँदनी

और प्रेम का स्वप्न देखती मछलियों की आँखें

अब भी सो जाती हैं चुपचाप

हमारी नींदों को सहलाती, अपने प्राणों की उँगलियों से।

युद्ध अब भी जाग रहा है

पहाड़ों की एकाकी उदास चोटियों पर

चाटता युवा स्वप्नों का रक्त ।

***

स्वप्न

धूप की चादर पर

पाँव रखती साँझ

उतरती हैं अमराइयों में धीरे धीरे

पश्चिम के क्षितिज में डूब रहा सूरज

जैसे नींद आती है

तेज़ बुखार के उतर जाने के पश्चात।

थम गया हैं उत्तप्त पलों का कोलाहल।

लहरों पर झिलमिलाने लगे हैं

चंद्रमा के स्वर्णिम स्वप्न

आकाश के घर शुरू हो गई हैं

तारों की दिया बाती।

प्रतीक्षा की आँखों में जल उठा है

आशा का एक दीपक

किनारे बंधी नाव हिलती है पानी में

अधीर हो जैसे किसी का मन।

खड़कती हैं रास्ते में सूखी पत्तियां

किसी के आने का संकेत लिए

अनवरत हो रही दस्तक सी

एक अनदेखे द्वार पर

हाथ उठते नहीं पहुँचने को साँकल तक

हृदय की देहरी पर

रुका हो पथिक जैसे

रुक गया है समय रात के इस क्षण

उत्कंठा के पंखों वाले पाँव

आबद्ध हैं संकोच की श्रृंखलाओं में,

झाड़नी होगी यात्रा की धूल

धुलवाने होंगे पाँव अपने पथिक के

ताकि शीतल हो यात्रा की थकन का ताप

जल में डूबते बतासे सा

घुलने लगा है मन

शब्द डूब रहे कंठ में जैसे जल में डूबती है गागर

आकुल- पूछने को कुशल क्षेम,

दिए के मद्धिम प्रकाश में

एक उजले वलय से आप्लावित

हो रहा हृदय का आँगन

जाग गए हैं स्मृतियों के सब स्पर्श

जैसे अंधेरे में चमकता है झील का जल,

विभ्रम सा कुछ

जैसे कोई भर ले स्नेह के आलिंगन में

जैसे कोई तितली बैठ जाए होंठों पर

जैसे छूट जाएँ मेखला के बंध

जैसे किसी ने चढ़ा दी हो प्रत्यंचा

फूलों के धनुष पर

टूटती है देह एक मधुर पीड़ा से

जैसे स्वप्न में हो कोई और स्वप्न।

नींद और स्वप्न की इस गोधूली में

जहाँ मिलते हैं छाया और प्रकाश

पिघल रही है रात तरल होती नदी सी

प्रतीक्षा अभी शेष है।

पृथ्वी राज सिंह की कविताएं

जीना ही है प्रेम

उसने थामा मेरा हाथ
कहा नहीं ऐसे नहीं
ऐसे होती है कविता
हाँ वह सही था
कविता के बारे में
जबकि मैं और थोड़ा
लिखना चाहता था ख़ुद को
एक कविता के होने से पहले
ठीक वैसे ही जैसे
किया था प्रेम
प्रेम में पड़ने से पहले
वो बनना - संवरना
ख़ुद ही स्त्री हो जाने तक
कल्पनाओं के दृश्य
समेटते- समेटते
किसी बदली सा यूंही
बरस जाने तक
गूंजने लगे अनहद तो
डरने लगती है ज़िन्दगी
तलाशने लगती है मायने
कि जीना उतना ही जीना
हद से हद सरहदों तक
अंत में हमको जीना ही है प्रेम
लिखनी है कविता भी कभी
***

उफ़ ये बच्चे

फर्राटा भरते
निकल जाते हैं तोते
छूते हुए कान

खंजन करती है मस्ती
लगाती है रेस
गाड़ियों के आगे

जाड़े को रख पत्थर में
चाँठी धार के बीच
घुरल टकराते हैं सींग

या गजबजा देती है
गिनती और गणित
पानी में जलमुर्गियां

जबकि इस वक्त में
इन्हें होना था
बगुले सा शान्त
हिरन सा सचेत

सदियां बीत गयी
लेकिन अभी भी
उफ ये बच्चे!
नहीं सुनते कभी
किसी की
***

कसक

तलाशते - तलाशते
अनछुए से गुज़र गये
कई-कई रास्ते

फेरीवालों की झोलियां
रंगों की पोटलियां
ना मिली संगतें
उड गयी रंगतें
तलाशते - तलाशते

फ्रेमों में आईनों में
उम्मीदें ठिठकी
अक्स ना उतरे
पटकते - पटकते
तलाशते - तलाशते

जलसे में शामिल
सलीबें हासिल
गुनहगार तो हुए
ईसा न हुए
सम्भलते - सम्भलते
तलाशते – तलाशते
***

चाँद है

चांद है
चांदनी में ताज
कब्र है

अन्धेरे में मुमताज
फिर चूकी
पूर्णता अपनी रोशनी
अधुरी है अधुरी
हमेशा जिन्दगी
***

शुभा मिश्रा की कविताएं

धानरोपनी

दिल नहीं लगा आज उसका
धानरोपनी के गीतों में
बबुआ की देह तप रही थी आते समय
ज्वर की सिरप पिला आई थी
रोपा न किया तो पेट की आग जलायेगी
अभी जला रही चिंता की आग
दिन कितना बड़ा लग रहा आज
साँझ ढले घर कितना दूर लग रहा था
खेतों में पानी खाये तलवों के घाव में दर्द नहीं
बबुआ बाट जोह रहा होगा
आरम्भ से अंत तक स्त्री और पृथ्वी
दोनों एक सी हैं....
***

सुखकर

दुखों की फेहरिस्त में
इस नए दुख की उम्र बड़ी लंबी है
ये दुख अब आँखों से नहीं बहता
फेंफड़ों ,लिवर और किडनी
में ढीठ बन बैठा है
हृदय तो दुख के बारूद से ढका है
बस पलिता लगाने की देर है
अंतड़ियां अधमरे स्वाभिमान की तरह
कोने में ढही पड़ीं हैं
संशय की खाइयों में लटकी ये गहरी काली
आत्मसंताप की रात कटेगी भी या नहीं
हे माधव ! तुम विस्मृत न हो
इसलिए ये दुख है ऐसा तुम सोचते
किन्तु तुमने मुझ अनूठे को चुना
जिसकी हथेली की रेखाओं से
दुग्धाभिषेक होता है
अधरों से मधुस्नान होता है
दिव्यचक्षुओं से जलाभिषेक होता है तुम्हारा
अनाहत चक्र में विषधर दुख बैठा है
वहाँ तो तुम्हारा आसन है प्रिय
तुम तो वहीं रहोगे न जो सुखकर हो ।
***

अनकहा

फ़ोन पर वह जो कहता है
जानती है कि कहना कुछ और चाहता है
चाहना होती है उन्हीं शब्दों को सुनने की
जो उसने कहा नहीं

मर्यादा की तीर से बिंधी वह जानती है
कामनाएँ चिर युवा होती हैं

उदासी की गठरी हवा में उछाल
वह छत पर चिड़ियों की कटोरी में पानी रखती है
जीवन संगीत में सभी सुर सही कहाँ लगते हैं

अपनी ठुड्डी पर की तिल को टटोलते हुए
अपनी लीव एप्लीकेशन टाइप करती है

हैरानी है वो अनकहे शब्द टाइप हो जाते हैं
जिसे सुनने की चाहना होती है उसे

ऐसा भी होता है क्या भला ?

क्लाडियॉ रैंकिन की कविताएं

अनुवाद- यादवेंद्र

जमैका से आकर अमेरिका में बस जाने वाली 52 वर्षीय अश्वेत ऐक्टिविस्ट कवि क्लॉडिया रैंकिन की पिछले साल पाँचवी किताब आई है **"सिटीजन : ऐन अमेरिकन लीरिक"** जिसे **न** सिर्फ़ नेशनल बुक क्रिटिक्स अवार्ड से सम्मानित किया गया बल्कि बुद्धिजीवियों और पाठकों की भरपूर प्रशंसा भी मिली। इस किताब को लिखने की प्रेरणा उन्हें पिछले कुछ सालों में अमेरिका में गोरों के बीच अश्वेतों को लेकर बढ़ रही असहिष्णुता,घृणा और हिंसा की प्रवृत्ति है। माइकेल ब्राउन हो या एरिक गार्नर,सेरेना विलियम्स हो या जिनेदिन जिदान या फिर टाइगर वुड्स -- इन सेलिब्रिटीज़ के साथ रंगभेदी बर्ताव किये जाने को लेकर रैंकिन बेहद मुखर हैं पर अपनी नयी किताब में वे अमेरिकी समाज में अश्वेतों के प्रति जिस घृणा को दस्तावेज़ी तौर पर रेखांकित करती हैं उसको वे "माइक्रो एग्रेशन" नाम देती हैं। इसी संकलन से रैंकिन की एक कविता प्रस्तुत है।

जगह बनाना

ट्रेन में खड़ी स्त्री आपको फ़ौरन समझा देती है कि
बैठने के लिए सीट खाली नहीं है ....
हाँलाकि सीट खाली है - एक सीट।
क्या इस स्त्री को अगले स्टेशन पर उतरना है ?
बिलकुल नहीं , उसको आख़िरी यूनियन स्टेशन तक
जाना है ...
और वह भी ऐसे ही खड़े खड़े।
सामने बैठे आदमी के बगल की जगह वैसे ही
खाली है
जैसे बातचीत के बीच अक्सर चुप्पियाँ आकर बैठ
जाती हैं
और तुम उसको भरने की कोशिश करने
लगते हो।
तुम उस स्त्री के मन में बैठे भय को कुचल कर
आगे बढ़ जाते हो
उस भय को जो वह इतनी देर से तुम्हारे साथ साझा
करती आ रही है
तुम हो कि उस भय को वैसे ही दुबक कर बैठे रहने
देते हो उसके मन के अंदर ....
इस बीच दूसरा आदमी छोड़ देता है अपनी सीट
कि काफ़ी देर से खड़ी आ रही स्त्री बैठ जाये
तुम घूरते हो उस ढ़ीठ आदमी को ....
जो अपलक देखता जा रहा है खिड़की से बाहर
जैसे निहार रहा हो कालापन।
***

अगस्त 2014 में फर्गुसन में **माइकेल ब्राउन** को किसी अन्य अपराधी से शक्ल सूरत मिलने का बहाना बना कर गोरे पुलिस वालों द्वारा गोली मारे जाने की घटना के सन्दर्भ में क्लॉडिया रैंकिन ने निम्नलिखित (गद्य) कविता लिखी। इस मौत के दो महीने बाद रैंकिन स्वयं वहाँ गयीं और बेहद मार्मिक पर आक्रोशित संस्मरण लिखा।
अगली किश्त में संस्मरण प्रस्तुत करूँगा।

रोशनी के फ़्लैश ... साइरन ... देर तक
खिंचा जाता कोलाहल ...

तुम वह नहीं हो जिसकी तलाश है
पर उसके हुलिये में फिट हो जाती है तुम्हारी सूरत

कोई अदद शख़्स तो होगा ही बेशक इस धरती पर
जिसका मिलता जुलता हो उस से हुलिया

बाहर निकलो ,खड़े हो ... ज़मीन पर ठीक से खड़े हो।

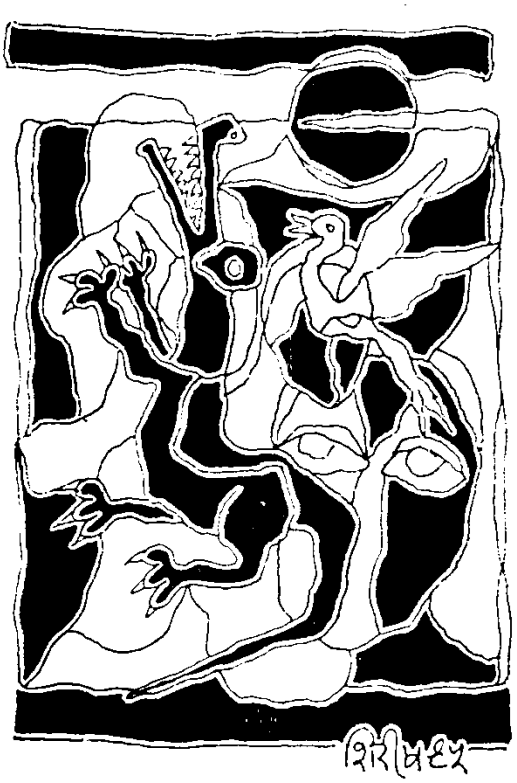

हो सकता है मेरी कार लिमिट से बाहर जाकर दौड़ रही हो ....
नहीं, तुम्हारी कार ज्यादा तेज़ नहीं थी।

अच्छा तो मैं तेज़ ड्राइव नहीं कर रहा था ?
नहीं , पर साफ़ साफ़ बताओ
तुमने सचमुच कुछ गलत नहीं किया ?

फिर आप मुझे इस तरह घसीट क्यों रहे हैं ?
आखिर किस जुर्म में इस तरह घसीटा जा रहा है मुझे ?

अपने हाथ वहाँ रखो जहाँ से हमें साफ़ दिखायी दें
हाँ ,हवा में लहराओ .... अपने हाथ हवा में
उठाओ ... अपने दोनों हाथ उठाओ।

इसके बाद तुम्हें खींच लिया जाता है बोनट पर
मुक्के मार मार कर फिर धक्के से फेंक दिया जाता है
ज़मीन पर , नीचे।

***

मराठी कविताएं

चयन एवं अनुवाद- विजय प्रभाकर नगरकर

फकीरराव मुंजाजी शिंदे

माँ

माँ एक नाम है
अपने आप भरा पूरा
घर में जैसे एक
गाँव है,
सभी में मौजूद रहती है
अब इस दुनिया से दूर है
लेकिन कोई मानता नहीं।
मेला खत्म हुआ, दुकानें उठ गई
परदेस में क्यों आंखे नम हुई,
माँ हर दिल में कुछ यादें छोड़ जाती
है
हर दिल जानता है माँ का दिल,
घर में जब दीप जले
कोई नहीं देखता उसे
अंधेरे में जब वह बुझ जाती है
तब समूचे मैदान में दिशाहीन
मन उसके लिए दौड़ता है,
कितनी फसलें, कितने फासले
मिट्टी की प्यास कब बुझ पाई है।
कितना खोदा है माटी को बार बार
नजर आता है कुआं
मन के गहरे पाताल में,
इससे क्या अलग है माँ?
घर जब वह मौजूद नहीं
किसके लिए गोशाला में गाय व्याकुल है
माँ का नाम क्या है
बच्चों की माँ
है
बछड़ों की गाय है
दूध का माखन है
लंगड़े का पैर है
धरती का आधार है
माँ है जन्म जन्मांतर की रोटी है
ना कभी खत्म होती है

ना कभी बचती है

***

शशिकांत शिंदे

समर्पण

अनुभूतियों के सभी दरवाज़े
बंद करने के बाद
धीरे धीरे खुलने लगती है –
संदेह की पुरानी खिड़कियां

बहस-दर-बहस का मरहम लगाकर
मिटते नहीं कलह के घाव
बल्कि
और अधिक गहरे होते जाते हैं ।

ऐसे समय पोषित करें
मन के संयम के कमल

या छाँट दें वृक्ष की टहनी
जो बढ़ रही अनियंत्रित

पंछी के निष्कलंक हृदय को
बचाया जाए
निर्णय की कुल्हाड़ी के घात से

मैं उसके होने को महसूस करता हूँ
इसीलिए हृदय के द्वार खोलकर
वह मुझसे बातें करता है,

मैं उसे सदैव स्वीकार कर लेता हूँ
उसकी हर भूल अनदेखा करके

ऊपरी सपाट तल से
समुद्र की तह का पता नहीं लगता
हमें पनडुब्बी बनकर
उसकी तह तक डूबना पड़ता है

किसी को समझना
या न समझना
कभी अर्थहीन नहीं होता
या इतना आसान भी नहीं होता,

‘ हवा के झोंके पर पत्ता उड़ गया’
इस मामूली बात के पीछे
हवा ने समर्पित किया होता है
अपना समूचा अस्तित्व उस पत्ते को,
तब उस पत्ते को अर्थ प्राप्त होता
है

हवा के साथ उड़ने का,
यह ध्रुवसत्य है कि
समझ के सभी द्वार
समर्पण के आंगन में खुलते है ।
***

अशोक नायगांवकर

ज्योतिबा

ज्योतिबा

धन्यवाद।

आप उसे

दहलीज के

बाहर ले आये,

क ख ग घ

त थ द ध

पढ़ाया

और

कितना बदलाव आया है ,

अब उसे

दस्तख़त के लिए

बायी अंगुली पर

स्याही लगानी नहीं पड़ती ,

अब वह स्वयं

लिख सकती है .....

मिटटी का तेल स्वयं पर

छिड़कने से पहले

(उसके पीछे रहनेवाले बच्चों को ध्यान में रखकर)

" मैं अपनी मर्जी से

जल कर ख़ाक हो रही हूँ"

***

इंद्रजीत भालेराव

गौरैया

पिताजी कहते थे
काटे हुए नाखून
दरवाजे के सामने
कभी मत फेंकना,
दाना समझकर
चुन लेती है,गौरैया
और
पेट की अंतड़िया टूटकर
तड़पकर मरती है गौरैया,
फसल कटाई खत्म होते ही
पिताजी मंदिर जाकर
बंदनवार में अनाज के भुट्टे बांध देते
थे,

फसल कटाई के दिन
उड़ा दिए गए पंछियों के लिए
पानी का भरा हुआ मटका टांग देते
और पुण्य कमा लेते थे,

पंछी होकर भी गौरैया जानती थी
पिताजी का मन
और
फसल कटाई खत्म होने पर भी

गौरैया डेरा डालती थी गांव घर आंगन।

***

ए. आर. देशपांडे 'अनिल'

आपातकाल

“आपातकाल”

कुछ राते इतनी अंधियारी थी

काजल बन जाता

समय ऐसा भी आया था

कुछ भी नहीं बचता,

तूफान ऐसा उठा था,

पतवार छूट जाती

तुन्द लहरों ने ऐसा घेरा था

जीवन नाव बच नहीं पाती

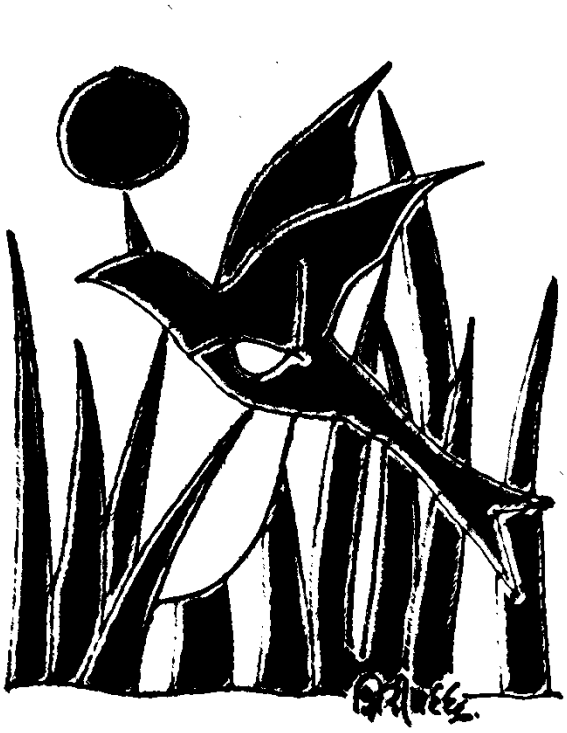

पागल बनकर कहीं बहक जाता

इतना नहीं था ध्यान

जलकर भस्म होता

किसी भी क्षण

हर दांव हार जाता था

मन करता फेक दूँ दाव

दिल पर इतने पड़े थे घांव

सोचता छोड़ दूँ तेरा गांव

कैसे निभाया कुछ पता नहीं

समझ आता नहीं था

मेरे पास कुछ नहीं था

सिर्फ तेरा हाथ मेरे हाथों में था।

***

हिमांशु विश्वकर्मा की कविताएं

नदियां और बेटियां

(19 वर्षीय हिमानी, एक सुदूर पहाड़ी ग्रामीण इलाके से आयी लड़की, जो स्नातक के लिए महिला महाविद्यालय हल्द्वानी प्रवेश लेती है. साल भर खेल के क्षेत्र में जीवन सवारने लक्ष्य को लेकर महाविद्यालय के अनेकों प्रतियोगिताओं में प्रतिभाग करती रही. बैटमिन्टन में उच्चस्तर की सक्षम खिलाड़ी होने पर भी जिसके बेहतरीन खेल, भविष्य और प्रेरणा को आंतरिक गुटबाज़ी और प्रशासनिक ठगबाजों ने आगे नहीं बढ़ने दिया.)

जैसे सुदूर पहाड़ों से आती हैं नदियाँ
ऊँचे पर्वतों
ताज़ी हवा और
हरे पत्तों पर बिसरी ओंस की बूंदों को
उलांघकर मैदानों तक

ठीक वैसे ही हिमाल की बेटियाँ
उलांघकर आती हैं मैदानों पर
असंख्य देहलियाँ
अनगिनत भेड़ें
अलौकिक **बुरूंश**[1] और **केराल**[2] के पुष्प.

मैदानों में आकर
नदियाँ सींचती हैं
तीव्र-निरंतर और नीरस
पिंजरों में बंद
शहरों के फड़फड़ाते ख़्वाबों को

फिर भी मोड़ दी जाती उसकी दिशा,
कैद कर लिया जाता है
उसका संवेग,
बदल दिया जाता उसका रंग
और
उसकी देह में ठूंसी जाती है
तमाम सभ्यताओं की गंध,

मैंदानों पर आकर
मेहनत और लगन से
बेटियाँ खींचती हैं
अपने सपनों की लकीरें
ईजा-बाज्यू[3] और **दाज्यू**[4] भेजते हैं दुआएं
भेजते हैं
काफल[5], ककड़ी, **बिरुड़े**[6] और घी

बेटियां जब बढ़ने लगती हैं
शहर में
अपने भविष्य के लिए
तभी
खींच लिए जाते हैं
उसके हाथ
हाशिये पर रख दिए जाते है उसके ख़्वाब
पूछे जाते हैं अनगिनत सवाल

निर्दोष जब लड़ती है
हक़ की लड़ाई
बोला जाता है गंवार,
पढ़ाई जाती हैं संस्कार और मर्यादाओं की पोथियाँ

बेटियों को सताया जाता है
दी जाती हैं
गालियां
मैदानों पर आने के लिए

उनके क़दमों को बाँध दिया जाता है
तोड़ दी जाती सीढ़ियों पर चढ़ने की आश
मोड़ दिए जाते हैं उनके रास्ते

छीन लिया जाता है उनसे
उसके जीवन का
हौसियापन[7].
***

1 सुर्ख फूलों का राज्यवृक्ष (Rhododendron)
2 कचनार (Bauhinia Variegata)
3 माता-पिता
4 बड़ा भाई
5 ग्रीष्मकाल में 4000-6000फीट पर लगने वाला पहाड़ी जंगली फल (Myrica Esculena) जिस पर अनेकों लोककथायें हैं
6 स्थानीय पांच-सात तरह की उगने वाली दालें
7 खुशमिजाज / बिंदासपन

भ्यास

(पहाड़ को छोड़ कर शहर में बसे ठेठ पहाड़ियों के लिए)

पहाड़ के **सयाणों**[8]
खुश रहो,
तुम्हारी ज़मीनें खरीदी जा रही हैं अब अच्छे दामों में

लेकिन
शर्त लगा लो
उस पैसे से तुम
भाबर में खरीदे प्लॉट की नींव को
दौड़ती सड़क के बराबर भी नहीं कर पाओगे,
और
याद रखना
एक दिन तुम्हारी ही नस्लें
तुम्हारे नाती-नातिनें, पोत-पोतियाँ
तुमको देंगें गालियां,
थूकेंगे तुम्हारी करनी पर

कोसेंगे तुमको कि
उस **टैम**[9] तुमने
जमीन, जंगल और पानी नहीं बेचा होता तो **गति**[10]
ऐसी नहीं होती

हम ठैरे मिट्टी से अन्न उपजाने वाले,
पानी से घराटों को गति देने वाले,
पेड़-पहाड़ों और जंगलों में घूमते जंगल चलाने वाले

हाय !
तुमने झूठी ठसक के चक्कर में पीढ़ियाँ खराब कर डाली
आधा रह गया तुम्हारा संसार,
गांव में सरकारी **सैप**[11] हो गए
और शहर में **भ्यास**[12] पहाड़ी.
***
8 समझदार लोग
9 समय
10 बुरा समय होना
11 साहब
12 भुस्स / सहज / बुद्धू

ब्यू

(मेरे हिमाल के लिए)

जहां हिमाल से दूर
शहर काट रहा होता है
रात को दिन की तरह
उम्दा टेक्नोलॉजी और
स्वयं को बेहतर दिखवाने की होड़ में
लांघता है बैठे-बैठे
सफल होने के फॉर्मूले
नेक्स्ट वीकेंड को जबरदस्त रोमांच से भरने के लिए
करता रहता है प्लान,
उसी समय उसका मन जूझता है
निरंतर उस जूते की तरह
जो महंगे शौक में खरीद तो लिया है
पर
पैर के तलवों में बराबर चुभन
बनाये हुए है
काटता है उसको
इनफीरीयोरिटी काम्प्लेक्स
चका-चौंध,
बाज़ारवाद
और
पूंजी की माया में लिप्त भ्रम

उसी भेड़चाल और रैट रेस से थोड़ा अलग-थलक
गाँव में
एक पिता सुबह-सुबह
घुघूत[13], **कफुआ**[14], **गिणी**[15], **टेपुल्लिया**[16]

हाय!
पता नहीं किन-किन
पक्षियों और भौरों की गुनगुनाहट से साथ उठकर
गिलास भर चहा खाकर
हल और **हौल**[17] **जभाँधूत**[18] **कुमथलों**[19] पर टिकाकर
दो बरस की
चेली[20] को साथ में लेकर
छिड़कता है अपने खेतों में
पुश्तैनी **भकारों**[21]-**फॉउलों**[22] में रखा अलौकिक ब्यू
बोता है धरती के सीने में गेहूँ

न्योली[23] की धुनों के साथ करता है
फसकबाजी,
दबाता है होंठों और दांतों के बीच मधु का नरम
डोज
और
माँ
जो कि अभी पुनः माँ बनने वाली है
रोज धार चढ़ कर लाती है
एक **पुसोलिया**[24] हरी घास
गोठ[25] की **धिनाली**[26] के लिए चुनती है
दुधिलपात[27], **बांजपात**[28] और **सालम**[29]

काटती लाती है अपने हिस्से का **माँगा**[30]
बतकों[31] में निश्चिन्त कहती है
'बुर जन मानि **हाँ**'[32]
न्योली गाती हुई पहाड़ की छाती पर
उड़ेलती है
गोबर के दर्जनों भर **डोके**[33]
और फोड़ती डालती है अंसख्य
मिट्टी के **डाले**[34]....
आने वाली
नई पीढ़ी के लिए
***

13 फाख्ता
14 चैत के महीने में बासने वाली एक पहाड़ी कोयल
15 गौरैया
16 हिमालयन बुलबुल
17 दो बैलों का जोड़ा
18 अड़ियल/ ताकतवर
19 कंधे
20 बेटी
21 मिट्टी और गोबर से लीपा गया बड़ा लकड़ी का बक्सा
22 तांबे की घड़ा
23 एकल रूप से मुख्यतः विरह, विलाप, याद, प्रेम, सुख या दुःख में फूटा गीत
24 रिंगाल/बांस से बना एक शंकुनुमा डलिया जिसको पीठ पर लादकर घास/गोबर/मिट्टी आदि इक्कट्ठा कर एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जाता है
25 गाय-बकरियों-भैसों को रखने का स्थान
26 दूध, दही, घी, छांछ
27 एक पेड़ जिनको गाय-भैसों को खिलाने से उनका स्वास्थ्य और दूध बढ़ता है
28 ओक के पत्ते
29 जंगली घास
30 घास उगने की जगह
31 बातें / गप्पें
32 कृपया बुरा मत मानना
33 पीठ पर लादे जाने वाली शंकुनुमा डलिया
34 बड़े-बड़े टुकड़े

हर्षिल पाटीदार की कविताएं

पिता

वे सिर्फ एक छत ही नहीं,
पेपरवेट भी थे.
जैसे ही हटे,
हम
कागज के पन्नों-से
बिखरते चले गए.
***

यथार्थ

जब मैं स्वयं को
सम्पूर्ण रूप से
पवित्र समझ चुका था,
उसी समय
एक मच्छर ने
फटी बनियान से बाहर झांकती पीठ पर बैठ
मेरा खून चूस लिया
और उड़ेल दिया ले जाकर,
वही कही, जहाँ मक्खियाँ भिनभिना रही थी.
***

ब्याह

एक दिन
उसका जीवन दो हिस्सों में बंट गया
और बदल गई
कई परिभाषाएं
उसके इर्द-गिर्द.
कुछ-कुछ बदला था उसका नाम भी
और पूर्णतः बदला था उसका पता.

उस दिन
माइग्रेशन का
सर्वश्रेष्ठ उदहारण बनी थी वो.
***

पिता और बैल

घर में
तीन किसान थे.
एक मर गया
तो दूसरा बुढ़िया गया.
और तीसरा
यह देख-देख कर
ज़िंदा
मर रहा है.
***

जहां

कल
जहाँ
दबी हुई चीख
दफ़न हो रही थी

अपने ही भीतर ,
उसी छत के ऊपर
आज
चन्द्रमा की
बाँट जोह रहा है
कोई.
***

सभ्यता

गर्भ में छुपा हुआ भविष्य
क्या ढूंढ पायेगा
हम में कोई सभ्यता
जैसे
हमने तराशा है
मोहनजोदड़ो और हड़प्पा को.
या उनके हाथ
पोलिथिन की थैलियों और
डिस्पोजेबल बोतलों में ही
फंसे रह जायेंगे.
वैसे, जब भी सुनता हूँ
समकालीन परिदृश्यों में
विडम्बनाओं के स्वर,
हृदय धिक्कारता हुआ कहता है,
उन थैलियों और बोतलों के नीचे
राख़ ही छुपी मिले तो बेहतर होगा.
***

फिलिस्तीन की कविता

अनुवाद-यादवेंद्र

फिलीस्तीनी मूल के माता पिता की संतान **लोहाब आसेफ अल जुंदी** का जन्म सीरिया में हुआ।
अमेरिका में इंजीनियरिंग की पढ़ाई के बाद वहीं बस गए।
अमेरिकी अरबी कविता के अनेक संचायनों में उनकी रचनाएं शामिल हैं।
ए लांग वे,इनक्लाइंड टु स्पीक, नो फेथ एट ऑल इत्यादि उनकी कविता की चर्चित किताबें हैं।

तुम जंगली तो हम जंगली

होलोकास्ट झेल कर बच निकले लोगों
मुझसे बात करो
मैं समझना चाहता हूं
कि तुम्हारे नाम पर यह सब
जो किया जा रहा है
उसके पीछे क्या तुम खड़े हो?

मुझे लगता था
तुम जिन भयंकर हादसों से बच कर आए हो
उनसे तुम्हारी आत्मा ज्यादा सभ्य हो गई है।
बम कम जानलेवा या अधम नहीं हैं
तुम क्यों दूसरों से इतना डरते हो
कि उनकी जान लेने पर उतारू हो?
एक आंख के बदले हज़ार आंखें?
होलोकास्ट की संतानों
इस तरह वहशी मत बनो
कि लगे तुम्हारी आंखें ही फूट गईं हैं।
***

दुनिया के खात्मे की कविता

यह कविता किसी के लिए नहीं है
क्योंकि इसको पढ़ने वाला
कोई बचेगा ही नहीं।
यह कविता दूर-दूर तक फैले हुए
खंडहरों के बारे में है
सुलगते बुरादों और राख की है
यह कविता जलकर काले पड़ गए
मुर्दा दरख़्तों की है
आग से नष्ट संगमरमर की है
जो पहले नीले जवाहरात की तरह थे
अब उनकी स्मृतियां शेष हैं।

यह कविता उन आंसुओं के लिए है
जो पहले बाहर निकल कर बह लेते थे
जब आंखें हुआ करती थीं
तब आंसू भी थे।
यह उदासी से भरी कविता है
उन खंभों की तरह एकाकी निर्जन
जिनपर कभी शान से थिरकते थे झंडे
पुराने सपनों की तरह छिन्न भिन्न
कहीं कोई फाख्ता नहीं
न जैतून की कोई टहनी
अमन चैन का नामो निशान नहीं।
प्यार और नफ़रत से परे
जिंदगी और मौत से परे
आत्मा बिलख बिलख कर रोती है।
तभी सुदूर आकाशगंगा में जगमगाता है
एक सुंदर सितारा
और कविता खड़ी हो जाती हे
अपनी बात कहने को।

गर्म चाय

बहुत साल हुए
मेरी दादी ने मुझे दिखाया था
कि गर्म चाय के गिलास में
चीनी डालकर कैसे मिलाना चाहिए
उन्होंने उंगलियों के बीच
छोटा सा चम्मच इस तरह पकड़ा
जैसे वह चम्मच न कोई नाज़ुक पंख हो
उन्होंने उसे बड़े प्यार के साथ
चाय के गिलास में डुबोया
और नीचे तले तक ले गईं
उसके बाद हौले हौले हिलाया आजू-बाजू
चीनी के दाने इधर उधर घूमने लगे
जैसे नीले आकाश में तैरते हैं
सफेद बादलों के टुकड़े
उसके बाद धीरे-धीरे घुल गए
दिखना बंद हो गया एक भी दाना...
मेरी आदत ग्लास में चम्मच डालकर
गोल-गोल घुमाने की थी
जिससे पूरा घोल गोल-गोल घूमने लगता
कभी-कभी उसमें से कुछ चाय
छलक कर बाहर भी आ जाती थी।
ऐसा क्यों होता है कि जब जब भी
अपने चाय के ग्लास में
चीनी का चम्मच डालने को होता हूं
मैं उसी पल पहुंच जाता हूं
अपने पुश्तैनी घर सलामिये
पाइन के ऊंचे पेड़ों के नीचे
धूप में रंग बिरंगी दरी डाल कर बैठे
घर के पिछवाड़े दादा दादी के पास?
मैं चाय के ग्लास में पहले तो
घुमाता हूं गोल गोल चम्मच
फिर बदल कर आजू बाजू
ऐसा करते करते दूर निकल जाता हूं
उन नटखट बादलों के संग संग।

***

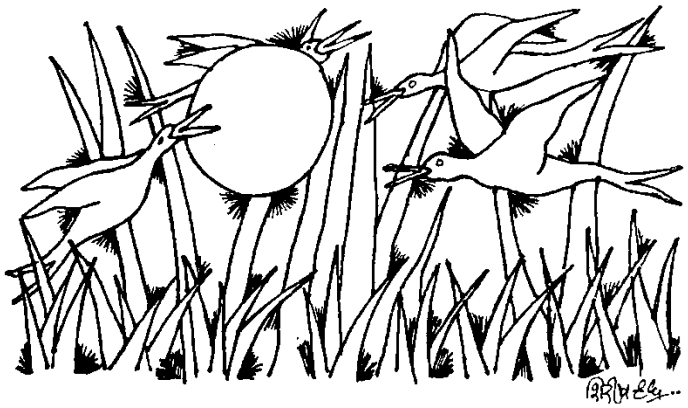

हुई मुद्दत कि ग़ालिब मर गया पर याद आता है

देवेन्द्र आर्य

ग़ालिब एक सांसारिक कवि हैं। मोह-लिप्त मगर माया-निर्लिप्त। दुनियाबी रंगीनियों को अगर होठों से पीने में हाथ साथ न दे रहे हों, तो उन्हें देख-देख कर आँखों से पीने वाला शायर। 'गो हाथ में जुम्बिश नहीं, आँखों में तो दम है। रहने दो अभी सागर ओ-मीना मेरे आगे।' अधूरी ख्वाहिशों का शायर! 'मंज़िल नहीं, पथ का कवि, तृप्ति नहीं तृष्णा का शायर' (सरदार ज़ाफ़री) एक मुसल्लस प्यास की नदी बहती रहती है, ग़ालिब के भीतर। दुनिया के बारे में अपनी अलग अवधारणाओं और कल्पनाओं का कवि। बेशक वह नज़ीर अक़बराबादी की तरह जन-कवि नहीं, किन्हीं अर्थों में अभिजन का कवि है परन्तु वह बहिश्त का भी कवि नहीं है। उसके लिए जो कुछ है, यही दुनिया है। ग़जब़ है कि संसार की रंगीनियों में सराया डूबा हुआ यह शायर अपनी शायरी में कल्पना-प्रवण और अर्थ-जटिल है। विराट दुर्बलताओं का कवि। या यूं कहें कि दुर्बलताओं की विराटता का कवि। 'हम वहाँ हैं जहाँ से हमको ही/कुछ हमारी ख़बर नहीं आती।' हिन्दी में ग़ालिब के जीवनीकार एवं अध्येता-समीक्षक, रामनाथ 'सुमन' ने अपनी पुस्तक 'ग़ालिब' में ठीक ही लिखा है कि अनुभूति की जितनी गहराई मीर मे है, उतनी ग़ालिब में नहीं है। परन्तु ग़ालिब के यहाँ जितना कथ्य-विस्तार है, उतना मीर के यहाँ नहीं है।

ग़ालिब सौन्दर्य के उपासक शायर थे। सौन्दर्य के संरक्षक शायर भी। वे हुस्न के रगो-रेशे में घुस कर उसके आत्मिक सौन्दर्य की रागनी सुनने का माद्दा रखते थे। हुस्न के जिस्म ही नहीं, उसकी रुह तक का सफ़र तय करने वाला शायर। सुबह की अँगड़ाई लेती हुइ्र हल्की और ठण्डी हवा ने भी अगर उनकी प्रिया के बालों को परेशान करने की हिमाक़त की तो उसकी ख़ैर नहीं।

हम निकालेंगे सुन ए मौजे सेबा बल तेरा
उसकी जुल्फ़ों के अगर बाल परीशां होंगे।

ग़ालिब चुनौती भरे समय को चुनौती देने वाले शायर हैं। ग़ालिब थे नहीं, ग़ालिब हैं। ग़ालिब जैसा शायर मरता नहीं। 'हुई मुद्दत कि ग़ालिब मर गया पर याद आता है।' ग़ालिब की शायरी जन-मानस में घर कर लेने वाली शायरी है। जब बौद्धिकों की भाषा में लिखता है ग़ालिब तो उसका मेयार यह होता है कि कविता, सभ्यता और संस्कृति की समीक्षा उसके शेरों को समझे और उद्धृत किए बग़ैर हो ही नहीं सकती। कारण यह कि ग़ालिब का रचनाकाल सभ्यता का संधिकाल है। पिछले एक दशक की छन्द-दुराग्रही हिन्दी काव्यालोचना के लिए ग़ालिब एक अपरिहार्य कवि हो चुके हैं। उन्हें उद्धृत किए बिना हिन्दी आलोचना का काम ही नहीं चलता। क्योंकि वह एक धर्मनिरपेक्ष कवि हैं। दूसरी तरफ वही ग़ालिब जब सीधी सपाट जन-भाषा में बात करते हैं तो वह मुहावरा बन जाता है। ग़ालिब के जितने मिसरे अवाम की जबान पर हैं, उतने शायद तुलसीदास के ही हैं। जबकि उसके बारे में आम मान्यता है कि वह एक कठिन शायर है। 'गो मेरे शेर हैं ख़वास पसंद/पर मेरी गुफ़्तगू अवाम से है।'

ग़ालिब बार-बार याद आते हैं। वज़ह यह है कि वे माजी के शायर नहीं, वर्तमान के शायर हैं। 'मैं

गया वक्त नहीं हूँ कि फिर आ ही न सकूं।' ग़ालिब एक नीम उदासी और तन्द्रा के शायर हैं। अपने में डूबे। खोए-खोए से। मगर जागृत। चैतन्य और सन्नद्ध। वे ऐश के लिए शराब नहीं पीते बल्कि एक मुसल्सल सोच में मुब्तला रहने के उन्माद के लिए मय का सहारा लेते हैं।

मय से ग़रज़ निशात है किस रुसियात को
एक गुनः बेख़ुदी मुझे दिन-रात चाहिए।

अपनी इस 'गुनः बेख़ुदी' की रक्षा के लिए वह अपने तर्क गढ़ते हैं। उनके लिए तर्क ही ज़ुदा है। वे अपना ख़ुदा अपनी जेब में रखते हैं। 'हम भी क्या याद करेंगे कि ख़ुदा रखते थे।' ज़िंदगी की अपनी कसौटियाँ हैं ग़ालिब की। पूजा-पाठ, रोजा-नमाज़, इह-लोक, परलोक, स्वर्ग-नर्क, अच्छाई-बुराई, सबको वह अपनी कसौटियों पर कसते हैं। उनका अक़ीदा फ़रिश्तों पर नहीं अपने आस-पास के हाड़-मांस के आदमी पर है।

पकड़े जाते हैं फ़रिश्तों के लिखे पर नाहक
आदमी कोई हमारा दम-ए-तहरीर भी था।

यह प्रश्नवाचकता ही ग़ालिब की शायरी की जान है। 'वो हर एक बात पर कहना कि यह होता तो क्या होता।' ग़ालिब एक जिज्ञासु शायर हैं। उनकी प्रश्नाकुलता में बालसुलभ अबोधता है जिसका सहारा लेकर वे बड़ी से बड़ी सर्वमान्य सच्चाई को भी बेपर्दा कर देते हैं। वे दुनिया को डूब के देखते-परखते हैं। लिखे-लिखाए, कहे-कहाए पर उन्हें यक़ीन नहीं। वह मुसलमान हैं परन्तु मुसल्लम ईमान वाली हिन्दू-मुस्लिम की भेदकारी परिभाषा और साम्प्रदायिकता से दूर रहने वाले शायर हैं।

वफ़ादारी बशर्ते इस्तवारी अस्ल ईमां है
मरे बुतख़ाना में तो काबा में गाड़ो बिरहमन को।

काबा ग़ालिब के पीछे है तो कलीसा (गिरजाधर) उनके आगे है। वह रात में जमजम (काबे के निकट एक कुआं) पर शराब पीते हैं और जाम-ए-एअहराम (काबे की परिक्रमा के दौरान शरीर पर बिना सिला धारण किए जाने वाला वस्त्र) पर पड़े शराब के धब्बों को सुब्हदम धोते हैं। वे स्वर्ग पर ख़ाक डालते हैं। 'दोज़ख में डाल दो कोई लेकर बहिश्त को।' यह हिमाक़त वही कर सकता है जो खुद को भी प्रश्नांकित करने की तटस्थ-क्षमता रखता हो।

ग़ालिब वजीफ़ाख़ार हो, दो शाह को दुआ
वह दिन गए कि कहते थे, नौकर नहीं हूँ मैं।

ग़ालिब ने बेपनाह ऐशो इशरत की ज़िन्दगी बसर की। मगर उससे कहीं ज्यादा तंगी भी भोगी। वे बादाकश ही नहीं फाकाकश शायर भी थे। यथार्थ की रूखी-कड़ी ज़मीन पर नंगे पांव चलने का माद्दा उनके यहाँ दिखता है। 'इन आबलों से पांव के घबरा गया था मैं/जी खुश हुआ है राह को पुरख़ार देखकर।' शायद ग़ालिब को भी नहीं पता रहा होगा कि अन्त समय में ये आबले पांवों तक ही महदूद नहीं रहने वाले हैं। अन्तिम समय में ग़ालिब के पूरे शरीर में दाने निकले, फूटे, घाव बन गए। आप उनकी तकलीफ का सिर्फ़ अंदाज़ लगा सकते हैं।

ग़ालिब ने लगभग 72 वर्षों की लम्बी ज़िंदगी बसर की। 1797 से लेकर 1869 तक। उन्होंने तीनों

अन्तिम मुगल सम्राटों - शाह आलम द्वितीय, अकबर द्वितीय और बहादुर शाह ज़फ़र को गद्दीनशीन और बेताज़ होते देखा। वे 1857 के चश्मदीद शायर थे। उन्होंने भाषा को फ़ारसीयत से निकलते और रेख़्ता (उर्दू) में ढलते देखा था। ग़ालिब नई ज़बान बनने के साक्षी थे। हालांकि बज़ातेखुद उनके मन में उर्दू के प्रति एक हीन-भाव था।

ग़ालिब की व्यक्तिगत जिंदगी बड़ी उतार-चढ़ाव वाली थी। उनके सात औलादें हुईं पर बची कोई नहीं। 30 साल का जवान भाई आँखों के आगे मर गया। पत्नी की बहन के बच्चे को गोद लिया पाला-पोसा। 'आरिफ़' उपनाम दिया। वह 'राहत-ए-रुह-ए-नातवां भी 36 साल की उम्र में साथ छोड़ गया। बेगम से ताउम्र छत्तीस का ही रिश्ता रहा। हालांकि इसके लिए ग़ालिब की अपनी बोहेमियन आवारागर्द शायराना ज़िंदगी कम ज़िम्मेदार न थी। उम्र भर किराएदार रहे। मरे तो भी कर्ज़दार। बेवा पर 800 रूपए का क़र्ज छोड़ कर। जुएबाजी में जेल काटी पर चले तो सिर्फ पालकी पर। खुद्दारी का आलम यह कि अंग्रेज बहादुर द्वारा लगभग तयशुदा अरबी-फारसी की प्रोफेसरी ठुकरा दी तो दूसरी तरफ सारी उम्र नवाबों और अंग्रेजों से वजीफ़ों की दरख़्वास्त करते रहे। वज़ीफ़ों पर जीते रहे। कर्ज़ की पीते रहे। अग्रेजों के मोह-पाश में बँधे रहे। अंग्रेजी सरकार को पेंशन के प्रार्थना-पत्र देते रहे। दिल्ली से कलकत्ते की लम्बी यात्रा की। ताउम्र ख़िताब, ख़िलअत और मंसब का मंसूबा पाले रहे, याचना करते रहे। जिंदगी संघर्ष का दूसरा नाम रही परन्तु शायरी को पामाल न होने दिया। अपनी सारी इंसानी कमियों और कमज़ोरियों के साथ जीने वाला पिछली चार शताब्दियों का सबसे बड़ा कवि। जो लोग अपने कवि से नायकोचित व्यक्तित्व की अपेक्षा रखते हैं उन्हें शायद ग़ालिब की जाती ज़िंदगी के आधार पर उनकी शायरी और उनके नस्र (गद्य) से घृणा होगी।

ग़ालिब की कविता से कम महत्वपूर्ण उनका गद्य नहीं है। ठीक महादेवी की तरह। वरिष्ठ आलोचक डॉ0 विश्वनाथ त्रिपाठी जहाँ एक ओर उन्हें खड़ी बोली का पहला आधुनिक कवि मानते हैं, वहीं उर्दू नक्कारों के हवाले से कहते हैं कि ''जो नावेल है, उसकी शुरुआत ग़ालिब के पत्रों से होती है।'' (ग़ालिब और भारतेन्दु: आधुनिकता के दो रूप; समकालीन सृजन में प्रकाशित लेख)।

बेशक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अमीर खुसरो (1255-1324) को खड़ी बोली का पहला कवि माना है परन्तु जहाँ तक सवाल आधुनिकता का है, आधुनिक काव्य-संवेदना, भाषा और चिंतन के आधार पर ग़ालिब ही खड़ी बोली के पहले आधुनिक कवि ठहरते हैं। ''ग़ालिब तसव्वुफ (आध्यात्म) की दुनिया में कभी कभार सिर्फ टहलने जाते हैं, रमने नहीं। ..... कविता का रास्ता कल्पना का रास्ता है, तर्क, का नहीं ..... कविता इसीलिए रूपक की भाषा में बात करती है। ग़ालिब सघन रूपक के कवि हैं।'' (मीर-ओ-ग़ालिब ले0 प्रमोद कुमार एवं विभु कुमार)।

ग़ालिब ने प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पहले तीन महीनों, 11 मई से 31 जुलाई, के हालात को अपनी पुस्तक 'दस्तम्बू' में कलमबन्द किया है। एक तरह से यह स्वतंत्रता संग्राम का आँखें देखा हाल है और सम्भवतः पहला प्रामाणिक दस्तावेज़। इसकी अहमियत का अन्दाज़ इसी से लगाया जा सकता है

कि सिर्फ पाँच महीनों में ही इसकी 500 प्रतियां खत्म हो गईं और 1865 में दस्तम्बू का दूसरा तथा 1871 में तीसरा संस्करण छापना पड़ा। हालांकि दस्तम्बू के बारे में विद्वानों के बीच विरोधी धारणा है। वरिष्ठ कथाकार अब्दुल बिस्मिल्लाह इसे अंग्रेजों के प्रति उनकी वफ़ादारी का दस्तावेज़ मानते हैं, वहीं डॉ0 नरेश का मानना है कि उपलब्ध 'दस्तम्बू' ग़ालिब की असली डायरी नहीं है।

'काश यदि रोज़ी-रोटी की विकराल समस्या ने ग़ालिब को अपनी असली डायरी नष्ट करने पर विवश न किया होता तो आज हमारे पास एक महान कवि द्वारा सुरक्षित 1857 का एक-एक ब्यौरा मौजूद होता और हमें वास्तविकता तक पहुँचने के प्रयास में अटकलें न लगानी पड़तीं।''

***

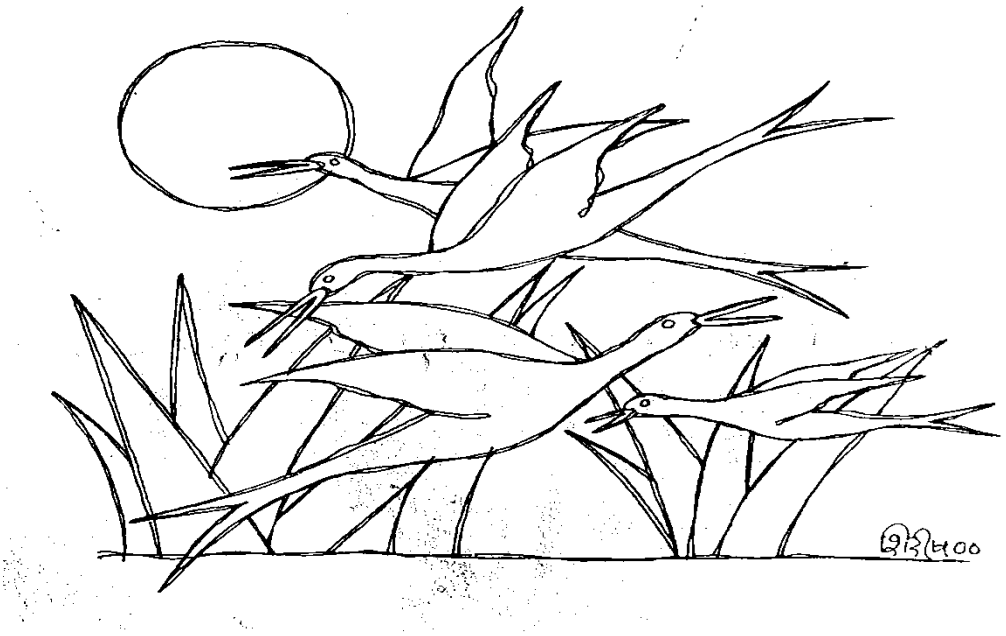

कुमाउनी लोक साहित्य में घुघुत

संजय घिल्डियाल

पाश्चात्य ज्ञान मीमांसा मुख्य रूप से सामाजिक परिदृश्य तथा प्राकृतिक क्षेत्र के मध्य विरोध पर आधारित है।[1] ऐसा विरोध पारिस्थितिक परिप्रेक्ष्य को नितांत रूप से दरकिनार कर देता है। किसी सामाजिक समूह के अध्ययन के दौरान उसके सामाजिक/सांस्कृतिक क्षेत्र की व्याख्या में सामान्यतः पारिस्थितिक ढाँचा/ ताने बाने- पादप, जन्तु, जल, मृदा-आदि का अंकन नहीं के बराबर होता है। फिर भी, हाल के वर्षों में सामाजिक सिद्धान्त ने सामाजिक यथार्थ के निर्माण में पारिस्थितिक यथार्थ को जोड़ने की आवश्यकता /अनिवार्यता को जागृत किया । सामाजिक यथार्थ के निर्माण में पारिस्थितिक आधारभूत ढाँचा/ ताना-बाना सामाजिक-सांस्कृतिक व वैचारिक प्रवृत्तियों को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण सूत्र प्रदान करता है । सामाजिक यथार्थ को समझने के लिए सामाजिक पारिस्थितिकी ने स्वयं को पाँचवें आयाम के रूप में स्थापित किया है। अन्य चार आयाम हैं- सामाजिक संरचना, अर्थव्यवस्था, राज्यतंत्र व संस्कृति (गुहा 1989: 4-5)।

सामाजिक अभिव्यक्ति व उसकी पारिस्थितिकी वास्तविकता के अनुपूरक पहलू हैं। सामाजिक पारिस्थितिकी को किसी समाज व उसके पारिस्थितिक आधारभूत ढाँचे को स्वतंत्र तटस्थ अस्तित्व के रूप में देखने के बजाय दोनों को एक अंतर्क्रियात्मक सिलसिले के रूप में देखा जाना चाहिए एक ऐसा सिलसिला जो दोनों (पारिस्थितिक ढाँचा एवं समाज) को ही परिवर्तित/अनुकूलित करता है। लोकसाहित्य[2], एक सामाजिक अभिव्यक्ति के सदृश, को इसलिए उसके मूल स्थान से पृथक नहीं किया जा सकता । लोकसाहित्य को साहित्य, जो दैरिदा के शब्दों में 'लेखन क्रिया व अध्ययन क्रिया का एक सिलसिला है' (दैरिदा, जे. 1992: 2)[3], के रूप में नहीं देखा जा सकता है। वस्तुतः यह समुदाय के साझे अनुभवों की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति है। किसी क्षेत्र का लोकसाहित्य अपने पारिस्थितिक ताने-बाने के सन्दर्भों, रूपक व प्रत्यक्ष दोनों से लबरेज़ होता है।

यहाँ हमारा प्रयास कुमाऊँ के लोकसाहित्य में घुघुत पक्षी व घुघुत के माध्यम से किए गए निरूपण को चिन्हित करना है।[4] यदि हम गाडगिल व गुहा के जनसंख्या के वर्गीकरण का अनुसरण करें तो कुमाऊँ क्षेत्र की आबादी को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। - पारिस्थितिक जन (ecological people) व पारिस्थितिक शरणार्थी (ecological refugees)।[5] क्षेत्र के सामाजिक राज्यतंत्र का पारिस्थितिक जन स्त्री प्रधान है।[6] हिमालयी क्षेत्र में महिलाएँ ही प्रकृति तथा इसके संरक्षण के लिए चिंतनशील हैं, जबकि पुरुष रोजगार के लिए दूरस्थ स्थानों पर चले जाते हैं (द्विवेदी 2000 : 17-18)। अत: हिमालयी क्षेत्र में पुरुष अधिकांश रूप से पारिस्थितिक शरणार्थी की श्रेणी में आते हैं।[7]

कुमाउँनी लोकसाहित्य में अनेकानेक पक्षियों का उल्लेख है। उदाहरणत: मोनाल[8], तीतरी, शुक, कव्वा, गौतेली, कफुआ, हुट-हुटिया आदि।[9] इस क्षेत्र में घुघुत (भारतीय चितकबरा फाख्ता, पेडुकी) की बहुलता तथा विस्तृत क्षेत्र उपलब्धता के कारण शायद कुमाउँनी लोकसाहित्य में इसका उल्लेख खुल कर हुआ है। इसके प्रतिनिधित्व का वर्ण पट काफी

विस्तृत है - दार्शनिक मसलों से लेकर सांसारिक मसलों तक ।[10]

क्षेत्र के लोकगीतों में घुघुत के काफी संदर्भ प्राप्त होते हैं ।[11] एक लोकगीत में पृथ्वी तथा आकाश के निर्माण सम्बन्धी विचार मिलता है:

घुघुत रौत्याली द्वि भाई बहिनीं पंखी पंख्यानी
भाई स्ले लै पंख्यानी को गरभ सिटझो
अन्ड दीनीं को महिनाँ ऐग्यो, पेड़ दरसन नीं भयो,
पंख्यानी असन्द आई ग्यो ।
सतयुग में सब सतबन्दी थिया,
पंख्यानी लै सत् फुकार् यो ।
पंख्यानी सत लै बीच तलों में गोगिना डाली उपजिग्यो,
यो पंख्यानी लै द्वी हाड़ो टोरी बेर टन-मन बनायो
एक अण्ड पैद करी बेर भगीवान कैं चड़ायो ।
दुसरो अन्ड पैद करी पानी में गिरी ग्यो ।
अन्डो त्रुटी बेर दो कुपिया होइग्यो-
माथ को कुपिया आसमान बनियो
मुनिको कुपिया पिरथी बनियो ।
(जोशी 1971 : 41)

निर्माण की धारणा निम्नवत् है:

देवताओं के बारम्बार प्रयासों के बाद भी पृथ्वी तथा आकाश का निर्माण नहीं हो सका। दो घुघुत पक्षी सहोदर थे। नर की छाया से मादा गर्भवती हुई। प्रसव काल नजदीक आया, अण्डे देने के लिए वृक्ष की आवश्यकता हुई। पर वहाँ अण्डे देने के लिए कोई स्थान नहीं था। क्योंकि यह सतयुग था, सभी प्राणी निर्मल व धार्मिक थे। मादा घुघुत ने सत् का आहवान किया, जिसके फलस्वरूप शून्य से शाखाएँ उत्पन्न हुई। मादा ने दो शाखाएँ तोड़ीं और घोंसले का निर्माण किया। पहला अंडा प्रथम / आदि पुरूष को उपहार स्वरूप दिया। दूसरा अंडा नीचे गिरा और दो भागों में विभक्त हो गया। ऊपरी भाग से आकाश का और निचले भाग से पृथ्वी का निर्माण हुआ ।

इस निर्माण के मिथक में घुघुत की भूमिका महत्व की है। इस निर्माण के मिथक की सादृश्यता मनुस्मृति में उल्लेखित ब्रह्माण्ड (golden egg) के साथ-साथ विश्व अण्ड (world egg) के हेलिनिस्टिक मत से भी है। प्रत्येक में दार्शनिक / सांकेतिक मत है -शून्य से अस्तित्व का प्राक्ट्य । अतः भारतीय शास्त्रीय परम्परा तथा कुमाउँनी लोक परम्परा के मध्य एक समानान्तर सम्बन्ध है ।[12] **इस विचार में भी घुघुत के संदर्भ में तथ्यपूर्ण ज्ञान गढ़ा हुआ है, अर्थात् ये दो ही अण्डे देता है व इसका घोंसला शाखाओं का एक ढीला मंच है।**

कुमाउँनी लोकसाहित्य के ऋतु गीतों में के घुघुत के सर्वाधिक संदर्भ मिलते हैं, यथा:

ए निं बासा घुघूति रून झून,
म्यारा मैती का देसा रून झून,
मेरी ईजु सुणैली रून झून,
ए निं बासा घुघूति रून झून।
पारा धारा का रूखा का मूंणी
कै चाणैछी पगली तु ऊड़ी
तेरि दासा देखी लागि जांछौ,
मैं निसासा घुघूति रून झून ।
ए निं बासा घुघूति रून झून,
काटि खांछ गाड़ को सुसाट,

मैं चानै रै गयूं वीको बाट,
वे उठी छ परान सुवै की,
मैं उदासा घुघूति रून झून।
ए निं बासा घुघूति रून झून।
मेरि ईजु सली रून झून ।
म्यारा मैती का देसा रून झून ।
खेड़ि खांछी भागी तेरि बांणी,
वेइ मरी इकली परानीं,
को बतालो मेरी हइ गेछ,
कसि दासा घुघूति रून झून
ए निं बासा घुघूति रून झून,
म्यारा मैती का देसा रून झून,
मेरी ईजु सुणैली रून झूना ।
(जोशी 1971 : 175-177)

यह लोकगीत एक कुमाऊँनी स्त्री की अपने मायके के प्रति व साथ ही साथ अपने अस्तित्व की कठोरता के प्रति उत्कण्ठा को प्रकट करता है। इस गीत में एक विवाहिता घुघुत से निवेदन करती है कि उसके मायके में अपनी रूदन भरी आवाज न करे जिससे उसकी माँ उदास हो जाएगी। वह उससे (घुघुत) पूछती है कि वो देवदार के चारों ओर क्यों मंडरा रही है । क्या है जिसे वह ढूँढ रही है? वह महिला कहती है कि घुघुत के दुःख से वह उदास हो जाती है, और उसका हृदय दुःख से भर जाता है। छोटी पहाड़ी जल

धारा का कल्लोल हृदय विदारक है। महिला चैत्र (मार्च-अप्रैल) के महीने में अपने भाई की प्रतीक्षा करती है परन्तु वह दिखाई नहीं पड़ता। महिला विलाप करती है: मेरी माँ को कौन मेरी दयनीय दशा बतलाएगा। इससे पूर्व कि हम पूर्व में कहे गए लोकगीत पर टिप्पणी करें इसी क्रम में दूसरे ऋतु गीत को देखते हैं जो इसी कला पक्ष का है:

हो घू घू घू घू, घुघुति चड़ी।
तेरि माया लै यो खाइ परानिं मेरी ।
घुघुति चड़ी, हो घुघुति चड़ी।
तेरी माया लै यो खाई परानिं मेरी ।
डाना काना उड़ उड़ जंगल गजायो ।
फूलि गेछ देना बैना म्योर भायो निं आयो ।
हो घू घू घू घू घुघुती चड़ी।
तेरी बात मैलै सुणी तू सिती भै भूको ।
भायो आयो भिटौली ल्यायो, तीलै वो निं देखो।
घु घू घू घू घुघुति चड़ी।
घुघुति चड़ी हो घुघुति चड़ी,
तेरी माया लै यो खाइ परानिं मेरी ।
उड़ उड़ दूर दूर घुर घुर घुरैछी ।
टुइ लगेंछी आग भुर भुरा भुरैंछी ।
हो घू घू घू घू, घुघुति चड़ी।
तेरी माया लै यो खाई परानिं मेरी ।
घुघुति चड़ी हो घुघुति चड़ी।
निंगले कि मांनि भागी, निंगले की मांनी।
दुखिया परानिं तेरी उदासिली बानीं ।
हो घू घू घू घू घुघुति चड़ी।
तेरी माया लै यो खाइ परानिं मेरी ।
घुघुति चड़ी चड़ी हो घुघुति चड़ी।
निंगले कि मान भागी, निंगले की मानी ।
दुखिया परानिं तेरी उदासिली बानीं ।
हो घू घू घू घू घुघुति चड़ी।
तेरी माया लै यो खाइ परानिं मेरी ।
घुघुति चड़ी चड़ी हो घुघुति चड़ी।
निंगले कि मान भागी, निंगले की मानी ।
दुखिया परानिं तेरी उदासिली बानीं ।

घुघुति चड़ी हो घुघुति चड़ी।
तेरी माया लै यो खाइ परानिं मेरी।
(जोशी 1971: 177-178)

इस लोकगीत में एक विवाहिता विलाप करती है कि सरसों खिल चुकी है परन्तु उसका भाई अभी तक भिटौली (चैत्र-मार्च/अप्रैल और बैशाख - अप्रैल मई के महीने में मायके से भेजा जाने वाला उपहार) लेकर नहीं आया। घुघुत की रूदन भरी आवाज़ उसकी भाई से मिलने की उत्कण्ठा को और बढ़ा देती है।

उपरोक्त दोनों ही ऋतु लोकगीत और इस कला पक्ष के अन्य लोकगीत इस लोक विश्वास पर आधारित हैं कि घुघुत उस बहिन की भटकती आत्मा है, जो सोई रह गई जब उसका भाई भिटौली लेकर आया था। उठने पर उसे एहसास होता है कि उसका भाई आया और चला गया। उससे न मिल पाने और उसका सत्कार न कर पाने के दुःख में उसकी मृत्यु हो जाती है। घुघुत के रूप में वह पुनर्जीवित होती है। चैत्र मास में ही घुघुत का मैदानी क्षेत्र से पर्वतीय क्षेत्र की ओर प्रवसन होता है।

यहाँ पारम्परिक / शास्त्रीय हिन्दू मान्यता में आत्मा के देहान्तरण सम्बन्धी अर्थात् पूर्वजन्म की लालसाओं के कारण आत्मा को निचले दर्जे जैसे पक्षियों, पौधों आदि में अधोपतन के साथ एक स्पष्ट समानान्तर सम्बन्ध जान पड़ता है।[13] इसके अतिरिक्त, हिमालयी क्षेत्र में स्त्रियाँ केवल खेती में ही प्रमुखता से संलग्न नहीं हैं वरन अकेले ही गृह सम्बन्धी, भोजन, ईंधन, चारे व जल संग्रह करने जैसे कार्यों में भी संलग्न हैं। पुरुष प्रधान यूरोपीय खेती के ठीक विपरीत कुमाऊँ के अर्थतंत्र में स्त्रियों की प्रमुख सहभागिता से विदेशी यात्री तक प्रभावित हुए (कैनेडी, जेम्स 1884 : 239) । अतः वह प्राथमिक वृत्तियों (जैसे - जुताई, रोपाई तथा कटाई आदि) में प्रमुख भूमिका तथा अन्य वृत्तियों (जैसे- शिशुओं का लालन-पालन, खान-पान, जल तथा चारे का संग्रह आदि) में अनन्य भूमिका का निर्वहन करती हैं (एम्बर आदि 2000: 325-341) । निर्मोही पतियों तथा निर्दयी सासों ने उसकी दशा को और दयनीय किया।[14]

बैठि घुघुति वै, तु किले घुरैछी
तेरी घुर घुर मैं किले रूलैंछी
बता कब म्यारा स्वामी घर आला हो
घुघुति उडिबेर बता कब म्यारा स्वामी घर आला हो

इस लोकगीत में एक स्त्री घुघुती से पूछती है कि वो उड़ कर बताए कि कब उसके पति घर आऐंगे। पर्वतीय पुरुष समूह का रोजगार की तलाश में मैदानों की ओर का प्रव्रजन उनके गृह से उनके पार्थक्य का कारण है। औपनिवेशिक काल के दौरान उन्नीसवीं सदी के मध्य में उत्तराखण्ड में सेना में भर्ती शुरू हुई, जिसके कारण बड़े पैमाने पर बतौर सिपाही पुरुषों का प्रव्रजन हुआ (गुहा, आर. 1989: 23) । प्रव्रजन की यह प्रक्रिया आज भी विभिन्न स्वरूपों में जारी है।

कुमाउँनी स्त्रियों का जंगल से गहन संबंध है।[15] यह जंगल दैनिक अनिवार्य वस्तुएँ ही नहीं प्रदान करते वरन् घरेलू कार्यों को अतिसंलग्नता से उलट एकान्त भी प्रदान करते हैं। यहाँ इसी जंगल से वह अपनी दयनीय दशा की अभिव्यक्ति के लिए रूपक चुनती है। घुघुत इन अलंकारिक अभिव्यक्तियों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह ध्यान दिया जाना अत्यंत दिलचस्प है कि अधिकांश लोकगीतों में

दयनीय दशा की अभिव्यक्ति का रूपक घुघुत की रूदन भरी आवाज है जो स्त्रियों की दयनीय दशा का प्रतिनिधित्व करती है। अतः पर्वतीय भू-भाग की स्त्रियों के अस्तित्व की कठिन परिस्थितियों को यहाँ के लोकगीतों में घुघुत करीब-करीब अनन्य रूप से प्रतिबिम्बित करता है। पुरूष / महिला के प्रकृति के साथ अंतर्संबंधों / अंतर्क्रिया में विभेद दिखाई पड़ सकता है ।[16] **कुमाउँनी लोकगीतों की वर्णनात्मक पारिस्थितिकी (narrative ecosystem) [17] में पर्वतीय स्त्रियों की दुर्दशा की अभिव्यक्ति के वाक्य विन्यास में घुघुत एक रूपग्राम (morpheme) के रूप में पाया जाता है।** दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कुमाउँनी भाषाई संकेतकी में घुघुत का अभिप्राय रूदन भरी आवाज़ से है।

पुरुष द्वारा अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए घुघुत रूपक का प्रयोग विरले ही लोकगीतों में हुआ है। मेला (उत्सव) गीतों के वर्ग में से एक ऐसे ही लोकगीत का दृष्टांत इस प्रकार है:-

ओ तारा का खामा भितेर बण घुघुति को घोल ।
भैंसें की ओसेरि हुनीं त्वे लिजानी मैं लै मोल।
ओ मेरी पराणा, त्वे लि जानी मैले मोल।
खेलि हालीं दांणि सुवा, बण घुघुति को घोल ।
भैंसे की ओसेरि हुन गोठै दिनों पांणी ।
(जोशी 1971: 251)

यहाँ पुरुष, जो एक स्त्री से विवाह करने का इच्छुक है, घुघुत के घोंसले को देखकर अधीर हो उठता है। वह कहता है कि यदि वो ओसारी होती तो उसे खरीद कर ले जाता और अपने गोठ में पानी देता।

लोकगीतों में घुघुत रूपक का प्रयोग स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त रूपक की तुलना में लोकगीतों में पुरुषों द्वारा घुघुत रूपक के प्रयोग से सर्वथा भिन्न है। **जबकि स्त्रियों के लिए घुघुत अपने मायके / पति के प्रति विरह वेदना का प्रतिनिधित्व करता है, पुरुषों के लिए घुघुत घोल (घोंसला) प्रेम का प्रतीक हो जाता है। अतः कुमाऊँ की वर्णनात्मक पारिस्थितिकी में घुघुत की अर्थवेत्ता स्त्री / पुरुष अभिव्यक्तियों में रूदन / प्रेम के अनुरूप पृथक पृथक है।**

कुमाऊँ की वर्णनात्मक पारिस्थितिकी में घुघुत मुहावरों/ लोकोक्तियों रूपी अभिव्यक्ति में भी चिन्हित होता है। ऐसे प्रतीकात्मक वर्णन (symbolic narrative) में सामाजिक परिदृश्य प्रतिबिम्बित होता है और ये अभिव्यक्ति को अनुप्राणित कर देते हैं। जोशी, (1971), पाण्डेय, (1985), पालीवाल (1985) एवं काण्डपाल व काण्डपाल (2002) द्वारा कुमाउँनी लोक परम्परा में प्रयुक्त मुहावरों/ लोकोक्तियों को सूचीबद्ध किया गया है। साथ ही इन्हें क्षेत्र के सामाजिक परिदृश्य में जोड़ने का प्रयास भी किया गया (जोशी, कृष्णानन्द, 1971:36-37, 379-400; पाण्डेय, त्रिलोचन, 1985 : 222-259)[18]

कई लोक कहावतों में पक्षी प्रतीकों का उपयोग अभिव्यक्ति के लिए हुआ है।[19] घुघुत के प्रतीक के रूप में प्रयोग के हम तीन उदाहरण प्रस्तुत करते हैं: 'गौणी घुघुती' अर्थात् व्यक्ति की गौण स्थिति/निरर्थकता (पालीवाल 1985 : 87) । यह कहावत शायद किसी वस्तु की प्रचुरता (जैसे इस क्षेत्र में घुघुत की) की साइकिक प्रवृत्ति से उपजती है कि जो प्रचुर है वह कम महत्वपूर्ण है अर्थात किसी वस्तु

की प्रचुरता / दुर्लभता उसके निरर्थक / सार्थक होने का प्रतीक है। लोक अभिव्यक्ति में घुघुत का दूसरा उदाहरण है: 'घुघुताक मुनल फुटन' अर्थात् दुरूह परिस्थितियों से परिपूर्ण जीवन। घुघुत जैसा कि हम पहले कह चुके हैं दु:ख का प्रतीक है। अन्तिम उदाहरण है: 'घुघुत जी उड़ खाँण' अर्थात् घुघुत जैसा नोच के खाना / निर्दयता पूर्वक कार्य करना (काण्डपाल व काण्डपाल 2002: 224) । अतः घुघुत लोकमन की अभिव्यक्ति का महत्त्वपूर्ण भाग है।

लोकसाहित्य में पक्षियों को प्रतीक के रूप में उपयोग करने या उससे सम्बन्धित अनेक आख्यान कथाएँ मिलती हैं। एक लोककथा 'घुघुति मैं सिती' का कथानक एक लोकगीत, जिसका ज़िक्र किया जा चुका है, से मिलता है (पाण्डेय, 1977 : 275)। यही लोक कथा एक अन्य शीर्षक 'भाई भूखों मैं सिती' (अर्थात् भाई भूखा लौटा मैं सोई रह गई) से भी जानी जाती है (जोशी, 1971:360-363)। 'ज्यूं हो' शीर्षक वाली एक कथा का ज़िक्र पहले किया जा चुका है (देखें टिप्पणी संख्या 14) ।

कुमाऊँ के लोकसाहित्य में विभिन्न गीत गाथाएँ मिलती हैं।[20] कुमाउँनी लोकसाहित्य में सर्वाधिक ज्ञात लोकगाथा मालूशाही है। क्षेत्र में इस लोकगाथा के विभिन्न वर्णन मिलते हैं (पाण्डेय, 1985 162) और यह शायद पारिस्थितिक स्थानीकरण (अर्थात क्षेत्र की पारिस्थितिकी के अनुरूप वर्णन में विभिन्नता)[21] का सर्वोत्तम उदाहरण है। इसका मुख्य विषय है मालूशाही राजकुमार और एक वणिक कन्या राजुला के मध्य प्रेम । राजुला और मालूशाही दोनों का जन्म एक स्थानीय देवता बागनाथ की कृपा से हुआ बताया जाता है। बागनाथ दोनों प्रेमियों की माताओं के स्वप्न में एक ही समय प्रकट हुए और उन्हें निर्देशित किया कि वो संतान प्राप्ति के लिए उनके मंदिर के दर्शन करें (यह दिलचस्प है कि देवता ने माताओं को निर्देश दिया कि जो भी पहले पहुंचेगा उसे पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद प्राप्त होगा, अतः पुत्र प्राप्ति, अन्तर्निहित तौर पर, कन्या की तुलना में एक बेहतर प्रस्ताव है)। यह प्रेमियों के पार्थक्य की कथा है। गीत गाथा के एक वर्णन में दोनों प्रेमी अनेकानेक प्रयत्नों के बावजूद नहीं मिल पाते और घुघुत व घुघुति में कायान्तरित हो जाते हैं। दूसरे वर्णन में जब मालूशाही अपनी प्रेमिका की तलाश में निकलता है तो वह घुघुत का रूप धारण करता है। इस गीत गाथा के अन्य वर्णनों में भी घुघुत चिन्हित है (उपाध्याय, 1979 146-184) । जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, कुमाउँनी लोकसाहित्यिक सांकेतकी में घुघुत का अभिप्राय रूदन से है। इसका एक उदाहरण मालूशाही से भी उद्धृत किया जा सकता है:

मुखड़ी चमकण लागी, पुन्यू कसी जून।
पालंग की आंठी जसी, पीरू कसी बून,
हिसालू की तोषी जसी, फ्यां जसी पोली
हंस की गरदन वीकी, घुघुती चारी रोली ।

यौवनावस्था में राजुला के रूप का वर्णन उपमालंकार के माध्यम से किया गया है। उसका मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान चमकने लगा है, उसका शरीर पालक के गठ्ठे के समान है तथा चीड़ के छोटे पादप के समान है। वह हिसालू के फल के समान है तथा फ्यां की कलियों के समान है। उसकी ग्रीवा हंस के समान है तथा उसका रोना घुघुती के समान है। (उपाध्याय, 1979 379-80) ।

घुघुत कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचुरता से पाया जाता है और कुमाउँनी लोकसाहित्य के भाषायी संकेत में घुघुत के संदर्भों की भरमार है। लोकसाहित्यिक परम्परा में यह उस धारणा की अभिव्यंजना करता है जो उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी कि पृथ्वी और आकाश की रचना साथ ही साथ किसी निरर्थकता की भी, जैसाकि उक्ति 'गौणी घुघुति' संकेत करती है। सर्वाधिक संदर्भों में, यद्यपि, यह रूदन, निराशा, लालसा और भय, खास तौर पर स्त्रियों के लिए, की अभिव्यंजना करता है। संस्कार गीतों, जो नामकरण, विवाह आदि में गाये जाते हैं, में घुघुत की अनुपस्थिति को देखा जा सकता है और इसका जिक्र मेला गीतों में दुर्लभता से मिलता है।

टिप्पणियाँ

1. 2002 दिसम्बर 4.7 में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में Environmental History of Asia पर आयोजित सेमीनार में प्रस्तुत किये गये लेख का हिन्दी रूपान्तरण। अनुवाद : डॉ. आशुतोष प्रताप पाण्डे ।

2. व्यक्ति अथवा समूह को विश्लेषण की इकाई मानने के संदर्भ में सामाजिक सिद्धान्त में मतैक्य है। एमील दुरखीम (1858-1917),आधुनिक समाजशास्त्र के एक जनक, का मत है कि सामाजिक तथ्य का निरूपण अन्य सामाजिक तथ्यों के सापेक्ष किया जा सकता है। अर्थात् सामाजिक व्याख्या के लिए सामाजिक तथ्य पूर्ण है।

3. लोकसाहित्य एक विस्तृत वर्ग है जिसमें किसी सांस्कृतिक समूह के सभी मिथक, पौराणिक कथाएँ, गीत गाथाएँ, कूट प्रश्न, जनोक्ति तथा अंधविश्वास निहित हैं (इन्ड्स, एलन 1989: viii) । लोकसाहित्य/लोकवार्ता (folklore) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम विलियम जे. टौम्स के लन्दन के एथेनोम में 22 अगस्त, 1846 को प्रकाशित एक पत्र में हुआ (हर्सकोवित्स (1955) 1995: 265)1

4. यह नहीं कहा जा सकता कि साहित्य के प्रकरण कुमाउँनी लोकसाहित्य का हिस्सा नहीं हैं, उदाहरणत: जैसा कि देखा गया है कि घटनाएँ एवं पात्र रामायण/ महाभारत से संबंधित हैं, फिर भी कुमाउँनी लोक परम्परा ने वाक् परम्परा के माध्यम से जनप्रिय उपभोग के लिए इन्हें उपलब्ध कराया है।

5. पक्षी हर काल व क्षेत्र की संस्कृति, साहित्य व लोकसाहित्य में उल्लिखित किये गये हैं। फ़ाख़्ता / पडुकी/घुघुत कई संस्कृतियों में प्रतीक चिन्ह के रूप में जाना जाता है। मैसोपोटामिया की सभ्यता में मातृत्व, ग्रीक में औरेकल, इस्लाम में यह मुस्लिम को इबादत के लिये बुलावे और ईसाई धर्म में वर्जिन मैरी से सम्बद्ध माना जाता है। यह पिकासो के प्रसिद्ध चित्रांकन The Dove of Peace में शान्ति दूत के रूप में दर्शाया गया है, वहीं प्राचीन जापानी सभ्यता में यह युद्ध सन्देशवाहक के रूप में देखा गया है।

6. गाडगिल और गुहा ने भारतीय आबादी को सर्वहारी (शहरवासी, आधुनिक सुविधाओं जैसे बिजली, पानी, टी.वी. आदि का उपभोग करने वाले), पारिस्थितिक जन (ग्रामीण तथा अधिकांश निरक्षर, बृहत परिवार वाले, स्त्रियों का अधिकांश समय ईंधन तथा चारे की तलाश में व्यतीत होता है)

और पारिस्थितिक शरणार्थी (मुख्यतः पुरुष, जो शहरों को काम की तलाश में जाते हैं) में विभाजित किया है (गाडगिल व गुहा 1995 : 3-5) ।

7. यह शायद उत्तराखण्ड के चिरपरिचित चिपको आंदोलन में स्त्रियों की प्रमुख भूमिका की व्याख्या करता है। वृक्षों को कटान से बचाने के लिए स्त्रियां वृक्षों से लिपटने को तैयार हो गईं। महिलाओं के पारिस्थितिकी के बावत पारम्परिक ज्ञान के पराभव के संबंध में वंदना शिवा का मत है कि महिलाओं द्वारा चार पांच हजार वर्षों में संचित खेती संबंधी ज्ञान को पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा दो दशकों से भी कम के अंतराल में खत्म कर दिया गया। इससे पारिस्थितिक असंतुलन में तेजी आई (शिवा, वंदना 1989 : 105)।

8. एस. डी. पन्त ने अपने महत्वपूर्ण कार्य हिमालय की सामाजिक अर्थव्यवस्था में हिमालयी स्त्रियों की दशा का उल्लेख किया है (पन्त, एस. डी. 1935)।

9. मोनाल हिमाचल तथा उत्तराखंड का राज्य पक्षी और नेपाल का राष्ट्रीय पक्षी है।

10. रामायण के अरण्यकाण्ड में सीता ने विभिन्न रूपकों का प्रयोग कर राम एवं रावण के मध्य भेद किया है, जिसमें से कुछ पक्षियों के रूपक हैं। वह दोनों के मध्य विभेद के लिए द्विक पक्षी समूह, जो बुराई और अच्छाई के प्रतीक हैं, का दृष्टान्त देती है : तुम्हारे (अर्थात रावण) और श्रीराम के मध्य उतनी ही विषमता है जितनी कि एक कव्वे और गरूड़ के मध्य, एक जलकाक और मोर के मध्य, तथा एक गिद्ध और हंस के मध्य (रूक्मणि, टी. एस. 2000 : 108) ।

11. कुछ प्राक्-गुप्त काल की पंक्तियां, जो चीनी भाषा में संकलित हैं, उस काल के लोकगीत प्रतीत होते हैं। इनमें से एक घुघुत से संबंधित है: मेरी चिड़िया, पडुकी, तुम तिल के बीज, चावल, ज्वार और शेष वस्तुओं का संग्रह अपने लिए कर लो उन्हें किसी पहाड़ी की चोटी पर उगे वृक्ष पर ले जाओ और उस पर अपने लिए ऊँची और उज्ज्वल नीड़रूपी गुहा बनाओ, जब विधाता वर्षा ऋतु देंगे, तब तुम निवास, भोजन और जल के विषय में विश्वस्त रहोगी (बाशम, ए. एल. 1972: 414)।

12. सामान्यतः प्रसंग के आधार पर लोकगीतों का वर्गीकरण किया जाता है जैसे धार्मिक संस्कार, ऋतुगीत, कृखेती उत्प अथवा पर्व, मेला, न्योली, जोड़, बालगीत इत्यादि। अधिक जानकारी के लिए देखें पाण्डेय, (1985 75-151), जोशी, (1971)1

13. वैदिक मतानुसार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति एक प्रजननात्मक घटना है (ऋग्वेद ग, 129) और इसकी उत्पत्ति हिरण्यगर्भ से हुई (ऋग्वेद ग, 121)। ऋग्वेद की प्रसिद्ध उत्पत्ति सम्बन्धी ऋचा (ग, 129) में शून्य से प्राक्त्य का वर्णन है (बाशम, ए एल. 1984: 249-250)। कुमाऊँनी लोकसाहित्य में निर्माण की यह अवधारणा गरूड़ व गरूड़ी के माध्यम से भी कहीं गयी है (पाण्डेय 1985 211-212)।

(अ) 1927 में बेलजियन पादरी व खगोलशास्त्री जॉर्ज लैमात्र (1894-1968) ने ब्रह्माण्ड की रचना एक आदि आग्नेय पिंड से होने की बात कही थी। यही प्रतिपादन बाद में बिग बैंग सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत हुआ (कुशिंग, जे. टी. 1998: 263)। बिग बैंग की व्याख्या में हमें शून्य के सिद्धान्त की प्रतिध्वनि

सुनाई पड़ती है (हैलिडे, रैस्निक व वालकर 2001 : 1137) ।

(ब) कार्लो गिंजबर्ग के कार्य में मैनोशियो को, अन्य कार्यों के अतिरिक्त, इस बात के लिए भी आरोपित किया गया कि वो बह्माण्ड की उत्पत्ति का आधार सड़न व गलन की प्रक्रिया को मानता था (गिंजबर्ग, काल 1980 xi) ।

14. देहान्तरण व पुनर्जन्म संबंधी हिंदू मान्यताओं के लिए देखें (बाशम, ए. एल. 1975: 76-82) ।
15. कई लोककथाओं में निर्दयी सासुओं का जिक्र किया गया है। उदाहरण के लिए लोक कथा 'ज्यूं हो' (अर्थात् 'मैं जाऊ') उस स्त्री की कथा है जो अपनी सास से मायके जाने के लिए आज्ञा चाहती है। सास कहती है वह घरेलू कार्यों को निपटा कर जा सकती है लेकिन साथ ही साथ विभिन्न तरीकों से कार्यों के पूर्ण होने को दुष्कर बना देती है। दिन के खत्म होते-होते स्त्री दुःख से प्राण त्याग देती है व एक पक्षी के रूप में पुनर्जीवित होती है जो 'ज्यूं हो ज्यूं हो' के स्वर का उच्चारण करती है (पाण्डेय, 1985 : 205)।

16. विद्वानों द्वारा अब अरण्य व जंगल जैसी शब्दावली के सूक्ष्म, किंतु सारगर्भित अंतरों को चिन्हित किया जाने लगा है। जिमरमान के जंगल / अरण्य संबंधी विभेद से सहमत होते हुए भी डव (1998) द्वारा जिमरमान के जंगल संबंधी एकात्मक सिद्धान्त के विपरीत जंगल समाज की द्वंद्वात्मकता पर बल दिया गया है।
17. स्त्रियों व पुरुषों के बीच संबंधों को मुद्रा अर्थव्यवस्था के प्रवेश ने विशिष्ट रूप से प्रभावित किया है। इससे उनके प्रकृति के साथ संबंधों में एक द्वंद्वात्मकता उत्पन्न हुई है। पुरुष, महिलाओं की तुलना में, मुद्रा अर्थव्यवस्था में अधिक संलिप्त हैं। स्त्रियां अभी भी गैर मौद्रिक, बायोमास आधारित पारम्परिक अर्थव्यवस्था पर निर्भर हैं। कई दृष्टांतों में एक ही परिवार में मौद्रिक लाभ के लिए पुरुष प्रकृति के अंधाधुंध दोहन में संलिप्त है जबकि यह स्त्रियों की दैनिक ईंधन व चारे की आवश्यकता की पूर्ति को और दुष्कर कर देता है (अग्रवाल, अनिल 1998: 364)। लोक परम्परा का एक उद्गामी पहलू भी है (बोमैन 1992: 29-40)। इस संदर्भ में यह अत्यधिक रूचिकर है कि पर्वतीय पुरुषों की मद्यपान की प्रवृत्ति, जिससे स्त्रियों की दुर्दशा और बढ़ी है, ने इस उक्ति को जन्म दिया: सूर्य अस्त पहाड़ी मस्त ।

18. वर्णनात्मक पारिस्थितिकी (narrative ecosystem) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फिलिप ल्यूजेनड्राफ (2000) द्वारा किया गया है।

19. लोकोक्तियों के वर्गीकरण के लिए देखें पाण्डेय, (1985: 160-161, सारणी 222) 1

20. उदाहरणार्थ - काव जै शिकार मार लुन त बाज को पालन (यदि कव्वा शिकार मार सकता तो बाज कौन पालता) (पाण्डेय, 1985: 253)। काव खाणि मन ऐ तितरि बतै (पालीवाल 1985: 361) (अर्थात इच्छाओं को परोक्ष रूप से व्यक्त करना, तितरी बताना जबकि इच्छा कव्वा खाने की है)। चारो खै गै तितुर चाखुर, जिबाव पड़ मुसभ्याक्कुर (चारा तो चुग गए तीतर, चकोर, आदि, जाल में आ फंसा मुसभ्याक्कुरा (एक छोटा चंचल पक्षी), अपराध किसी का सजा कोई भुगते) (जोशी, 1971: 385) ।

21. गीत गाथाओं के वर्गीकरण के लिए देखें पाण्डेय, (1985), उपाध्याय, (1979: 26-28)।

22. कुमाऊँनी लोकसाहित्य में किसी प्रसंग के पारिस्थितिक स्थानीकरण के कई उदाहरण देखे जा सकते हैं। यथा, रामायण के मूल वर्णन में सीता हरण संबंधी घटना का स्थान निर्वासित राम का आश्रम है वहीं कुमाउँनी रामायण में यह पनघट में परिवर्तित हो जाता है व सीता को एक स्थानीय युवती के रूप में दर्शाया गया है। इसी प्रकार महाभारत के मूल वर्णन में पांडवों तथा कौरवों के बीच उत्तराधिकार के लिए युद्ध हुआ। वहीं कुमाउँनी महाभारत के एक विवरण में युद्ध का कारण पांडवों की बिल्ली द्वारा कौरवों की पहाड़ी मुर्गी को मारा जाना बताया गया है (उपाध्याय, 1979: 241-283; पाण्डेय, 1985 :171-179)।

सन्दर्भ

Agarwal, Anil. 1998. An Indian Environmentalist's Credo. In Guha, Ramachandra (1998).

Basham, A. L. 1984 (1954). The Wonder That Was India. Calcutta: Rupa & Co.

बाशम. ए. एल. 1972. अद्भुत भारत. अनुवाद वेंकटेशचन्द्र पाण्डेय. शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी, आगरा.

Basham, A. L. ed. 1975. Cultural History of India. Delhi: Oxford University Press.

Burton, M. 1949. The Story of Animal Life. vol.II- Vertebrates. Elsevier Publishing Com- pany Ltd., London. 129-130.

Chapple and Tucker ed. 2000. Hinduism and Ecology: New Delhi: Oxford University Press.

Cushing, James T. 1998. Philosophical Concepts in Physics. Cambridge: Cambridge Univer- sity Press.

Derrida, Jacques. 1992. Acts of Literature. Ed. Derek Attridge. London: Routledge.

Dove, M.R.1998 (1992). 'Jungle' in Nature and Culture'. In Guha, Ramachandra ed. (1998).

Dundes, Alan. 1989. Folklore Matters. Knoxville: University of Tennessee Press.

Dwivedi, O. P. 2000. Dharmik Ecology. In Chapple and Tucker (2000).

Ember, R. Carol et al. 2000. Anthropology. Singapore: Pearson Education.

Gadgil, Madhav andGuha Ramachandra. 1995. Ecology and Equity: The Use and Abuse of Nature in Contemprary India. New Delhi: Penguin Books.

Ginzburg, Carlo. 1980. The Cheese And The Worms: The Cosmos of a Sixteenth-Century Miller. London and Henley: Routledge and Kegan Paul.

Guha, Ramachandra. 1989. The Unquiet Woods. Delhi: Oxford University Press.

Guha, Ramachandra. 1998 (1994). Social Ecology. Delhi: Oxford University Press.

Halliday, D., Resnick, R. and Walker, J. 2001. Fundamentals of Physics. New York: John Wiley & Sons, Inc.

हर्सकोवित्स, मैलविल जे. (1955) 1995, सांस्कृतिक मानवशास्त्र अनुवाद रघुराज गुप्त, विवेक प्रकाशन दिल्ली।

जोशी, कृष्णानन्द काण्डपाल, लता व काण्डपाल, दीपा . 1971, कुमाऊँ का लोक साहित्य: परिचयात्मक संग्रह, प्रकाश बुक डिपो, बरेली।

2002. कुमाउँनी हिन्दी लोकोक्ति एवं मुहावरा कोष, अनामिका, नई दिल्ली।

Kennedy, James. 1884. Life and Works in Benares and Kumaun 1839-1877.

पालीवाल, ना. द 1985, कुमाउँनी हिन्दी शब्दकोष, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।

पाण्डेय, त्रिलोचन 1977, कुमाउँनी भाषा और उसका साहित्य, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

पाण्डेय, त्रिलोचन 1985 (1962), कुमाऊँ का लोक साहित्य, अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा। 1935, Social Economy of the Himalayans, London.

Pant, S.D. 1935, Social Economy of the Himalayans, London.

Rukmani, T.S. 2000, Literary Foundations for an Ecological

Aesthetic : Dharma, Ayurveda, the Arts and Abhijñanacakuntalam. In Chappel and Tucker. Ed. (2000).

Shiva, Vandana. 1989. Staying Alive. Delhi: Kali for Women, Delhi

उपाध्याय, उ.द. 1979, कुमाऊँ की लोक गाथाओं का साहित्यिक और सांस्कृतिक अध्ययन, बरेली बुक डिपो, बरेली।

Zimmeermann, F.1987, The Jungle and the Aroma of Meats. Chicago: University of Chicago Press.

पहाड़ पत्रिका-18 से साभार

मूल लेख – Indian Spotted Dove in Kumauni Folklore: Man in India, Vol89, no 4. Pp. 637-646 : ISSN 0025-1569.

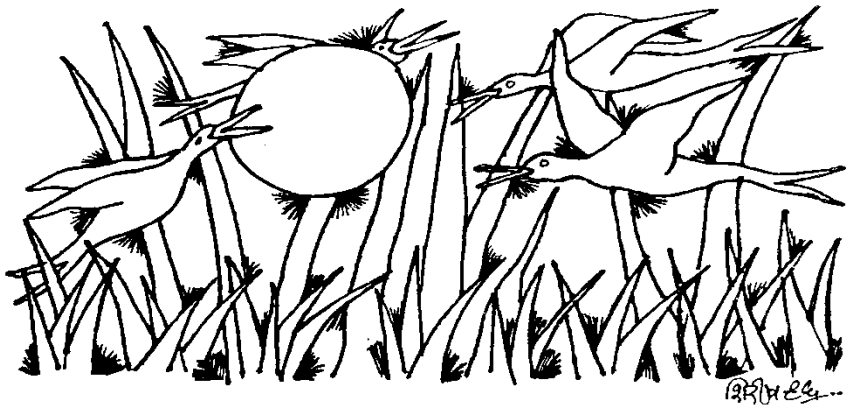

हिन्दी साहित्य और न्यू मीडिया

लीलाधर मंडलोई से मेधा नैलवाल का साक्षात्कार

मेधा नैलवाल - हिंदी साहित्य और न्यू मीडिया के संबंध को आप किस तरह देखती हैं ?

लीलाधर मंडलोई- हिन्दी और न्यू मीडिया के संबंध में सबसे प्रमुख बात जो उभर कर आ रही है, वह यह है कि न्यू मीडिया ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार में वैश्विक स्तर पर बहुत ही सकारात्मक भूमिका निभाई है। जैसे - हिन्दी के बहुत सारे फॉन्ट आ गये, हिन्दी के बहुत सारे सॉफ्टवेयर आ गये, गूगल के माध्यम से आप हिन्दी का कई रूपों में मुद्रण कर सकते हैं, टंकण कर सकते हैं, बोलकर कर सकते हैं। इसके अलावा और भी कई नई विधियां आईं हैं जिसके हिसाब से हिन्दी और न्यू मीडिया के संबंध लगातार प्रगाढ़ होते जा रहे हैं। समग्रता में यही कहा जा सकता है कि न्यू मीडिया ने हिन्दी के प्रचार-प्रसार में और उसको विश्वव्यापी बनाने में और उनको अंतरभाषीय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, उसका कारण यह है कि आज मलयालम का, कश्मीरी का, बांगला के लोग भी अपनी रचनाओं को हिन्दी में लाना चाहते हैं और उनके पास लाने का एक ही ज़रिया है- देवनागरी फॉन्ट में लाना। अब उसको कुछ काम करवा के बड़ा मार्केट जो हिन्दी का है, उसमें भारतीय भाषाओं के और विश्व भाषाओं के लोग प्रवेश कर सकते हैं। न्यू मीडिया ने या जिसको कहें न्यू टेक्नोलॉजी ने सॉफ्टवेयर के साथ यह सुविधा उपलब्ध कराई है।

मेधा नैलवाल - सोशल मीडिया पर लेखकों की उपस्थिति से पाठकों की संख्या पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

लीलाधर मंडलोई- सोशल मीडिया में यदि आप ये सोचें, जो बहुत गंभीर क़िस्म के लेखक हैं उनकी कोई उपस्थिति है, तो वह बहुत कम है और फेसबुक हो, ट्विटर हो, इंस्टाग्राम हो, इस पर जो सीनियर और गंभीर लेखक हैं, जिनका कि नाम है हिन्दी साहित्य में, वो तो वहां उपस्थित नहीं हैं। आते कौन हैं- जो तीसरी पीढ़ी के लेखक हैं या एक दम नई पीढ़ी के लोग हैं, जिनको अपनी किताबें छपवानी हैं, जिनको लेखक बनना है और जो इस प्रक्रिया में आना चाहते हैं, वो मूल रूप से सोशल मिडिया पर हैं। सोशल मिडिया एक ऐसा माध्यम है, जहां आपको ना संपादक की आवश्यकता है, किसी से कोई अनुमति लेने की ज़रूरत नहीं है, जो आप लिख रहे हैं वो डाल दीजिए यानि लेखक भी आप हैं, संपादक भी आप हैं, कॉपीराइट भी आपका है और तमाम चीज़े आपकी हो गई, लेकिन आप जो लिख रहे हैं, उसका जो मूल्यांकन है, वो तो आपने कहीं किया नहीं, उर्दू में इस्लाह होती है कि उस्ताद से आपको अपना लिखा हुआ जँचवाना पड़ता है और हिन्दी में भी कम से कम इतना तो होता ही है कि आप जिन वरिष्ठ लेखकों के साथ बैठते हैं, उनके साथ अपना लिखा साझा करते हैं और उनसे पूछते हैं, ये सारी परंपराएं न्यू मीडिया आने के साथ ही बंद हो गयी हैं इसलिए चाहे भाषा अच्छी हो, चाहे ना हो, रचना अच्छी हो ना हो, सोशल मिडिया पर है, तो जो पाठक आ रहे हैं सोशल मिडिया पर, वो उसी तरह के हैं, जो इस तरह के साहित्य को पसंद कर रहे हैं, क्योंकि वो किसी गंभीर साहित्य के साथ कभी जुड़ नहीं पाए।

और ये मार्केट का प्रमोशन है, जिसकी वजह से लेखक भी प्रमोट कर रहा है अपनी रचना को , अपनी किताब को और उसने ये कला समझ ली है कि उसको अपने पाठकों तक कैसे पहुंचना है। फेसबुक पर जाने के बाद यदि उसे अपनी पोस्ट बूस्ट करनी होती है तो वह उसका पेमेंट भी करता है, जितने कॉन्टेक्ट ग्रुप हैं उसमें अपनी रचना शेयर भी करता है, तो सोशल मीडिया में जो पाठक आ रहा है, जो गंभीर पाठक नहीं है, जो इन रचनाओं से जुड़कर अपनी उपस्थिति दर्ज़ करवा रहे हैं ताकि उनका भी नोटिस लिया जा सके कि वो बहुत अच्छे पाठक हैं या वो एक लेखक बनने की प्रक्रिया में हैं। ऐसे लोग वहां आ रहे हैं जिनका कोई न कोई इंटरेस्ट है बिना इंटरेस्ट के तो कोई नहीं आता, क्यों आयेंगे वो आपके या मेरे कहने पर, जब वो साहित्य पढ़ते ही नहीं रहे आप उनको बुला रहे हैं, तो उसमें उनको एक ग्लैमर दिख रहा है कि इस मीडिया में आप जो लिखेंगे या लाइक करेंगे पूरी दुनिया में जायेगा, लेखक के अलावा, प्रकाशक के अलावा। यह जो आकर्षण है इस वजह से जो आ रहे हैं वो पाठक नहीं हैं, वो एक तरह के कस्टमर हैं, रचना के कस्टमर हैं, मूल लेखक या प्रकाशक रचना को इसलिए डाल रहा है क्योंकि उसको क्लाइंड चाहिए, वो सब्सक्राइव करेगा, तो उसे गूगल से विज्ञापन मिलेंगे ।

मेधा नैलवाल - प्रचार एवं बिक्री के नए मंच न्यू मीडिया ने तैयार किए हैं। इस पर आपके क्या अनुभव हैं ?

लीलाधर मंडलोई- इस में अनुभव ये हैं कि न्यू मीडिया में तो अपार संभावनाएं हैं और वो एक कॉर्म्शियल वर्ल्ड है। आप उसे कितना एक्सप्लाइड कर सकते हैं, कितना समझते हैं ; ये आप पर निर्भर करता है। सारी चीज़े जाकर एक जगह रूक जाती हैं कि जो प्रकाशक हैं, जो बेचना चाहते हैं उसकी पूंजी कितनी है? वो कितना इन्वेस्ट कर सकता है? तो यह एक तरह का दो ध्रुवों के बीच में कॉर्म्शियल प्रपोजिशन है। एक जिसको बेचना है और दूसरा जो पैसा लेकर अपने क्लाइंड तक पहुंचाता है। तो इन दोनों के बीच में जो संबंध है, उससे प्रकाशक खुश भी नहीं है, क्योंकि वो अभी फ्लिपकार्ट को इसके अलावा अमेजॉन को उपयोग में ला रहा है, वहां आपकी किताब का लगभग जो मूल्य है उसका 70 प्रतिशत इन लोगों के पास चला जाता है। भंडारन के नाम पर चला जाता है और उनके जो कमिशन हैं उसके नाम पर, पोस्टेज हैं, उसके नाम पर चला जाता है, तो उसके कई तरह के मॉड्यूल हैं। उस मॉड्यूल में अब किसी को अपनी किताब बेचनी है और उसके पास कोई दूसरा विकल्प नहीं है, सोशल मीडिया के अलावा, तो जो 70 प्रतिशत का पेमेंट उसे फ्लिपकार्ट को या अमेजॉन को करना होगा, तो ये पैसा आयेगा कहां से, किताब की कीमत को बढ़ाकर। जिस किताब की कीमत 100 रूपये है, उसको जब तक 200-250 आप नहीं करेंगे तो आप बिक्री साइड्ड को पेमेंट नहीं कर सकते हैं, तो इस तरह से ये न्यू सोशल मीडिया है, न्यू मार्केटिंग एजेंसी हैं, उनके और प्रकाशक के बीच में ये जो एक रिश्ता है,वो कैसे पूरा होगा? क्योंकि आपको अपनी किताबों की कीमत बढ़ानी पड़ेगी, उसके लिए रीजंस

क्रियेट करने पडेंगे तभी जाकर उसका खरीददार भी मानेगा कि ये कीमत सही है । यह एक बहुत ही द्वन्द्वात्मक स्थिति है आज के मार्केटिंग वर्ल्ड में मीडिया, प्रकाशन और मार्केटिंग को लेकर ।

मेधा नैलवाल - लेखक, प्रकाशक और पाठक किताब की इस आधारभूत संरचना में न्यू मीडिया ने नया क्या जोड़ा है ?

लीलाधर मंडलोई- इसमें जोड़ने की जो बात है, तो पाठक के लिए सूचना को जोड़ा, प्रकाशक के लिए व्यापार को जोड़ा, व्यापार की संभावनाएं बढ़ गईं, प्रकाशकों को नए प्लेटफॉर्म मिल गए बेचने के, पहले तो ऑनलाइन ही बेचते थे, अब तो किंडल इत्यादि कई जगह हैं जिसमें एक ही रचना को आप लेखक से ख़रीद रहे हैं रॉयल्टी के आधार पर, लेकिन जितने प्लेटफॉर्म पर प्रयोग कर रहे हैं, उन प्लेटफॉर्म्स की रॉयल्टी तो दे नहीं रहे हैं। रॉयल्टी तो वही 7.5, 10 या 15 प्रतिशत है। आप रॉयल्टी तो वही दे रहे हैं जो प्रिंट माध्यम के लिए तय है, लेकिन आप ऑनलाइन माध्यमों में भी बेच तो रहे हैं, तो उसका पैसा तो लेखक को मिल ही नहीं रहा है, तो ये जो संबंध है ये अपने आप में बहुत रहस्यात्मक है, जो लोगों को मालूम ही नहीं है। मैंने अपनी रचना आपको दी और मैंने कहा कि ये रचना सिर्फ़ प्रिंट के लिए नहीं है, जितने भी ऑल न्यू मीडिया राइट्स हैं, उसके हिसाब से मेरा कॉन्ट्रेक्ट बनाओ, तब मैं साइन करूंगा वो कोई प्रकाशक करता ही नहीं, क्लास रहता है लेकिन उसका कोई भुगतान नहीं होता क्योंकि उसमें स्पेसिफाई नहीं किया गया है कि ये जो आपको रॉयल्टी दी जा रही है प्रिंट की और प्रिंट मीडिया के अलावा जो अन्य प्लेटफॉर्म हैं, उसकी कितनी रॉयल्टी देंगे आप तो उसका स्टेटमेंट ही नहीं बनेगा। लेखक को ये सारी चीज़े मालूम नहीं इसलिए लेखक इसी बात पर प्रसन्न हो जाता है कि चलो किताब छप गयी, लेकिन उसको अपने राइट्स के बारे में पता ही नहीं है, ये मूल बात है ।

मेधा नैलवाल - क्या न्यू मीडिया ने पुस्तकों के कॉपीराइट पर कोई प्रभाव डाला है ? सोशल मीडिया और ब्लॉग पर कॉपीराइट अधीन साहित्य बिना पूर्वानुमति या पारिश्रमिक के छपता है, इससे प्रकाशन के हितों पर क्या प्रभाव पड़ा है।

लीलाधर मंडलोई- ये जितना भी ऑनलाइन व्यापार है, यहाँ तक कि यूट्यूब, गूगल इत्यादि। इन माध्यमों पर जो कुछ भी हम डालते हैं, वो अवेयर हैं क्योंकि वह ग्लोबल प्लेटफॉर्म हैं, ग्लोबल में हिन्दुस्तान के या थर्ड वर्ड देशों के अलावा अन्य सारे देश बहुत सख़्त हैं अपने कॉपीराइट को लेकर। जब कोई एग्रीमेंट होता है और लेखक को ही नहीं मालूम तो उसमें ऐसे प्रोवीजन डाल दिए जाते हैं कि वो फिर सिर्फ़ ऑपरेटिव होता है प्रिंट के लिए। और हिन्दुस्तान में जब तक आप यह ना कहें कि आपको इस बात की जानकारी है, तब तक वो चीज़ आपके एग्रीमेंट उस तरह से नहीं आयेगी और यदि आपका एग्रीमेंट साफ नहीं होगा तो कोर्ट भी आपके साथ नहीं होगा। ये जो एक तरह की डायलिक्स है, उसको लेखक, प्रकाशक और पाठक में सिर्फ़ प्रकाशक समझता है, लेखक और पाठक समझता समझता ही

नहीं है । पाठक को तो इससे कुछ लेना-देना ही नहीं है, पाठक तो पैसा खर्च करके किताब ले रहा है, लेखक अपनी किताब दे रहा है उसको सबसे ज़्यादा सावधान होना चाहिए चूंकि उसकी किताब छप भी नहीं रही है या कई दूसरे कारण हैं, तो वह किसी भी स्थिति में जाकर अपनी किताब छपवाने में इंटरेस्टेट रहता है, वो ये क़ानून, रॉयल्टी के चक्कर में नहीं पड़ता इसलिए उसको कुछ मिलता नहीं है।

मेधा नैलवाल - ई-पुस्तकों के प्रकाशन का आपका अनुभव कैसा है। इन पुस्तकों को कितने पाठक मिलते हैं? इनका भविष्य क्या है।

लीलाधर मंडलोई- ई-बुक्स तो ग्लोबल मार्केट है और ई-बुक्स को लोग क्यों पढ़ते हैं ? उसका कन्टेंट, उसकी मार्केट में स्थिति क्या है? वो कितना पॉप्युलर है, वो कॉमिर्शियल कैटेगिरी में आता है कि नॉन कॉमिर्शियल? वो लिटरेरी है कि कल्चरल है। और इस विषय पर यदि कुछ नहीं लिखा गया है, तब खरीददार आकर्षित होता है ई-बुक पर। लेकिन जो उसने पढ़ा हुआ है या जिसके बारे में उसे जानकारी है, उसके लिए वो आकर्षित नहीं होगा, तो ई-बुक में आप क्या नया लेकर आते हैं, जो मार्केट से अलग है, जो आकर्षित करने वाला है और उसका जो प्रमोशन या एडवर्टिजमेंट आप डालेंगे, लोग सबसे पहले उसको देखेंगे, फिर आप किस तरह से उसका प्रमोशन करते हैं, आप उस किताब पर एक पेज या आधा पेज डेडिकेट करते हैं प्रमोट करते समय, तो आज के लिटरेरी वर्ल्ड में उस किताब का कन्टेंट कितना नया है, कितना अलग है या कितना कंट्रोवर्शियल है, कंट्रोवर्शी भी पे करती है । तो वो सारी चीज़े वैसी ही रहती हैं अब उसके हिसाब से जो करता है, बिक जाता है और जो उसके हिसाब से नहीं करता है तो आपका जो क्लाइंड है, क्लाइंड को कुछ नहीं मालूम है, वो अंधेरे में है। उसमें आपने कवर डाल दिया, शीर्षक डाल दिया, आपने लेखक का नाम डाल दिया, इससे वो आकर्षित नहीं होता, वो आकर्षित होता है कि उसमें है क्या? आप कुछ कर पा रहे हैं कि नहीं कर पा रहे हैं ? और हिन्दी के प्रकाशक ऐसा कुछ नहीं कर रहे हैं कि किसी की किताब में जो विशिष्टता है, जो प्वाइंट ऑफ पर्चेज है उसको इन्विल्ट कर सकें ।

मेधा नैलवाल- ऑडियो बुक्स की शुरुआत भी इधर हिन्दी में हुई है। इस क्षेत्र में आपका अनुभव और राय क्या है ?

लीलाधर मंडलोई- एक नया मीडिया फॉर्मेट जो भी होता है, उसमें आपको जाना पड़ता है, आपको इसलिए जाना पड़ता है क्योंकि वर्ल्ड का जो रिकॉर्ड है क्योंकि हिन्दुस्तान या थर्ड वर्ल्ड में कोई भी चीज़ बहुत देर में आती है, इसके अलावा दुनिया के अन्य जितने भी देश हैं उनमें तो ये चल ही रहा है, वहां उनका रिजल्ट इसलिए अच्छा होता है कि वो कंपनीज जो ऑडियो बुक्स का काम कर रही हैं, स्थापित हो चुकी हैं, उनका प्रमोशन अच्छा है, उनका प्रॉफिट हो गया है, वो इंवेस्ट भी कर सकते हैं। आपके यहां ऑडियो बुक्स पहले- पहल आ रही हैं। पहले तो ऑडियो बुक्स को प्रमोट कैसे किया जाय, इसी की जानकारी नहीं है लोगों को, जो डबिंग आर्टिस्ट होते हैं उनसे प्रोडक्शन करवाते हैं , तो किसी अंतरराष्ट्रीय भाषा की चीज़ को अपने यहां डब करना

और अपने यहां की मूल भाषा को ऑडियो बुक में प्रस्तुत करना दोनों में तो बुनियादी फ़र्क़ है चुंकि यहां के पब्लिशर्स के पास पैसा होता नहीं है इसलिए वो किसी से भी कुछ भी करवा के लगा देते हैं, तो उसका मार्केट तैयार नहीं होता है। उनको लगता है कि हमने 50 रूपये खर्च किए और हमको 100-150 रूपये भी मिल गये तो हमारी जेब से क्या गया? मार्केटिंग का एक जो विज़न है, अभी बनना है हिन्दी में । लोग पॉडकास्टिंग कर रहे हैं, ऑडियो बुक्स कर रहे हैं लेकिन न्यू मीडिया का जो टोटल बजट है, जो प्रकाशक को मिलता है, आज भी 2 या 3 प्रतिशत ही न्यू मीडिया से मिलता है, बाक़ि अभी भी सब परम्परागत चल रहा है ।